ह्रीः

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध पत्रिका

A Review of rare buddhist texts

3

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी
1987

दुर्लभबौद्ध ग्रन्थशोधपत्रिका

A Review of rare buddhist texts

3

Editors
PROF. S. RINPOCHE
Project Director
VRAJ VALLABH DWIVEDI
Deputy Director

सम्पादक
प्रो० एस० रिन्पोछे
योजना निदेशक
व्रजवल्लभ द्विवेदी
उपनिदेशक

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्द २५३१ ख्रीस्ताब्द १९८७

सहायक मण्डल

जनार्दन पाण्डेय | महेन्द्ररत्न वज्राचार्य
ठाकुर सेन नेगी | वङ्छुग् दोर्जे
बनारसी लाल

मूल्य : रु० ४२.००

प्रकाशक :
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा-संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

मुद्रक :
रत्ना प्रिन्टिंग वर्क्स, कमच्छा, वाराणसी ।

धीः

विषयानुक्रमणी

●

येनाकृष्य मनोद्भवं सकुलिशं नीतं ललाटं स्वकं
यत्प्रज्ञानबलेन शाक्यमुनिना वज्रं महोष्णीषगम् ।
सालम्बा ननु शून्यता सकरुणा नालम्बने यस्य वै
तस्मै देवनरासुराहिगुरवे विश्वैकशास्त्रे नमः ॥

शाक्यमुनिस्तोत्र

प्रज्ञापारमितास्तोत्रम्

[यह स्तोत्र श्री जगन्नाथ उपाध्याय जी के व्यक्तिगत संग्रह में उपलब्ध अप्रकाशित स्तोत्र-संग्रह (पत्र संख्या 76-77, स्तोत्र क्रमांक 97) से लिया गया है। इस संग्रह का विवरण 'धीः' के प्रथम अंक, पृ० 51 में दिया जा चुका है।]

ॐ नमः श्रीप्रज्ञापारमितायै

निर्विकल्पे नमस्तुभ्यं प्रज्ञापारमितेऽमिते।
या त्वं सर्वानवद्याङ्गी निरवद्यैर्निरीक्ष्यसे ॥ 1 ॥

आकाशमिव निर्लेपां निष्प्रपञ्चां निरक्षराम्।
यस्त्वां पश्यति भावेन स पश्यति तथागतम् ॥ 2 ॥

तवाचार्यगुणाढ्याया बुद्धस्य च जगद्गुरोः।
न पश्यन्त्यन्तरं सन्तश्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव ॥ 3 ॥

कृपात्मकां प्रपद्य त्वां बुद्धधर्मपुरःसराम्।
सुखेन यान्ति माहात्म्यमतुलं भक्तवत्सले ॥ 4 ॥

सकृदप्याशये शुद्धे यस्त्वां विधिवदीक्ष्यते।
तेनापि नियतं सिद्धिः प्राप्यतेऽमोघदर्शने ॥ 5 ॥

सर्वेषामपि वीराणां परार्थे नियतात्मनाम्।
नापोषिका जयन्ती च तासां त्वमसि वत्सला ॥ 6 ॥

ये बुद्धा लोकगुरवः पुत्रास्तव कृपालवः।
तेन त्वमसि कल्याणि सर्वसत्त्वपितामही ॥ 7 ॥

सर्वपारमितासि त्वं निर्मलाभिरनिन्दिता।
चन्द्रलेखेव ताराभिरनुद्योतासि सर्वदा ॥ 8 ॥

विनेयजनमासाद्य तत्र तत्र तथागतैः।
बहुरूपा त्वमेवैका नानानामभिरीक्ष्यसे ॥ 9 ॥

प्रभां प्राप्येव दीप्तांशोरवश्यायोदबिन्दवः।
त्वां प्राप्य प्रलयं यान्ति दोषा वादाश्च वादिनाम् ॥10॥

त्वमेव देवि जननी बालानां भीमदर्शना ।
आश्वासजननी चासि विदुषां सौम्यदर्शना ॥ 11 ॥

यस्य त्वन्येष्वभिष्वङ्गस्त्वन्नाथस्य न विद्यते ।
तस्यापि कथमन्यत्र रागद्वेषौ भविष्यतः ॥ 12 ॥

नागच्छसि कुतश्चित्त्वं [कुत्रचिन्न] च गच्छसि ।
स्थानेष्वपि च सर्वेषु विद्वद्भिर्नोपलभ्यसे ॥ 13 ॥

ये त्वामेव न पश्यन्ति प्रपद्यन्ते च भावतः ।
प्रपद्य च विमुच्यन्ते तदिदं महदद्भुतम् ॥ 14 ॥

त्वामेव बध्यते पश्यन्न पश्यन्न विबद्धचते ।
त्वामेव मुच्यते पश्यन्न पश्यन्न विमुच्यते ॥ 15 ॥

अहो विस्मयनीयासि गम्भीरासि यशस्विनी ।
सुदुर्बोधासि मायेव दृश्यसे न च दृश्यसे ॥ 16 ॥

बुद्धैः प्रत्येकब(बु)द्धैश्च श्रावकैश्च निषेविते ।
मार्गस्त्वमेको मोक्षस्य नास्त्यन्य इति निश्चयः ॥ 17 ॥

व्यवहारैः पुरस्कृत्य प्रज्ञप्त्यर्थंशरीरिणाम् ।
कृपया लोकनाथैस्त्वमुच्यसे न च नोच्यसे ॥ 18 ॥

शक्तः कस्त्वामिह स्तोतुं निर्निमित्तां निरञ्जनाम् ।
सर्ववाग्विषयातीतां [नूनं] क्वचिदनिश्चिताम् ॥ 19 ॥

सत्येवमपि संवृत्या वाक्यार्थैर्वयमीदृशैः ।
त्वामस्तुत्यामपि स्तुत्वा तुष्टिमन्तः सुनिर्वृताः ॥ 20 ॥

प्रज्ञापारमितां स्तुत्वा यन्मयोपचितं शुभम् ।
तेन त्वाशु जगत्कृत्स्नं प्रज्ञापारपरायणम् ॥ 21 ॥

इति श्री ल(र)क्षाभगवतीकृतं प्रज्ञापारमितास्तोत्रं समाप्तम् ॥

●

आर्यश्रीवसुधारानामधारणीस्तोत्रम्

[यह स्तोत्र प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय के व्यक्तिगत संग्रहस्थ अप्रकाशित स्तोत्रसंग्रह से लिया गया है (स्तोत्र सं० 119, पत्र सं० 110-112)। इस संग्रह का विवरण 'धीः' के प्रथम अंक, पृ० 51 में दिया जा चुका है।]

ॐ नमो भगवत्यै आर्यश्रीवसुधारायै

दिव्यरूपो सुरूपी च सौम्यरूपी बलप्रदा।
वसुधरी वसुंधारी वसुश्री श्रीकरी वरा॥ 1॥

धरणी धारणी धाता स(श)रण्या भक्तवत्सला।
प्रज्ञापारमिता देवी प्रज्ञा श्रीबुद्धिवर्धिनी॥ 2॥

विद्याधरी शिवा शू(सू)क्ष्या(क्ष्मा)शास्ता सर्वत्र मातृका।
तरुणी तारु(र)णी देवी विद्यादानेश्वरेश्वरी॥ 3॥

भूषिता भूतमाता च सर्वाभरणभूषिता।
दुर्दान्तत्राश(स)नी भीता उग्रा उग्रपराक्रमा॥ 4॥

दानपारमिता देवी वर्षणी दिव्यरूपिणी।
निधानं सर्वमाङ्गल्या कीर्तिर्लक्ष्मीर्यशः शुभा॥ 5॥

दहनि(नी) मालनी चण्डी शबरी सर्वमात्रिका।
कृतान्तशाश(स)नी रौद्री कौमारी विश्वरूपिणी॥ 6॥

वीर्यपारमिता देवी जगदानन्दरोचनी।
तापसी उग्ररूपी च ऋद्धिसिद्धिबलप्रदा॥ 7॥

धन्या पुण्या महाभागा अजिता जितविक्रमा।
जगदेकहिता विद्या संग्रामे तारणी शुभा॥ 8॥

क्षान्तिपारमिता देवी शीलनी ध्यानध्यायनी।
पद्मिनी पद्मधारीश्च(री च) पद्मप्रिया पद्मासनी॥ 9॥

शुद्धरूपी महातेजा हेमवर्णा प्रभाकरी।
चिन्तामणिमहादेवी प्रज्ञापुस्तकधारिणी॥ 10॥

निधानं कूटिमारूढिधन्यागारधनप्रिया ।
त्रैधातुकं महा आदि दिव्याभरणभूषिणी ॥ 11 ॥
मातरी सर्वबुद्धानां रत्नधातेश्वरेश्वरी ।
शून्यता भावनी देवी भावाभावविवर्जिता ॥ 12 ॥
वैन्ये(ने)य किं न विन्यस्ता दिव्यक्लेशनिछेदनी ।
भी(भे)दिनी सर्वमाराणां सप्तपातालक्षोभिनी(णी) ॥ 13 ॥
ब्राह्मणी वेदमाता च गुह्या च गुह्यवासिनी ।
सरस्वती विशालाक्षी चतुर्ब्रह्मविहारिणी ॥ 14 ॥
ताथागती महारम्या वज्रिणी धर्मधारिणी ।
कर्मधातेश्वरी विद्या विश्वज्वालाभमण्डली ॥ 15 ॥
बोध(धि)नी सर्वसत्त्वानां बोध्यङ्गकृतशेखरी ।
ध्याना धीर्मुक्तिसंपन्न[ा] अद्वयद्वयभाविनी ॥ 16 ॥
सर्वार्थसाधनी भद्रा स्त्रीरूपामितविक्रमा ।
दर्श(शि)नी बुद्धमार्गाणां नष्टमार्गप्रदर्श(शि)नी ॥ 17 ॥
वागीश्वरी महाशान्ति[र्] गोप्ति(प्त्री) धात्री धनप्रदा ।
स्त्रीरूपधारिणी सिद्धा योगिनी योगजेश्वरी ॥ 18 ॥
मनोहरी महाक्रान्तिः शौ(सौ)भाग्यप्रियदर्शिनी ।
सार्थवाहकृपादृष्टि[ः] सर्वताथागतात्मकी ॥ 19 ॥
नमस्तेऽस्तु महादेवी सर्वसत्त्वार्थदायिनी ।
नमस्ते दिव्यरूपी च वसुधारा नमोऽस्तु ते ॥ 20 ॥
अष्टोत्तरशतं नाम त्रिकालं यः पठेद्धि(त् पु)मान् ।
प्राप्नोति नियतं सिद्धिमीप्सितार्थमनोरथान् ॥ 21 ॥
यदज्ञानकृतं पापम् आनन्तर्यसुदारुणम् ।
तत्सर्वं क्षपयत्याशु स्मरणात् स[र्व]भद्रकम् ॥ 22 ॥
अथवा शीलसंपन्नः सप्तजातिस्मरो भवेत् ।
प्रियश्चादेयवाक्येन रूपवान् प्रियदर्शनः ॥ 23 ॥
विप्रक्षे(क्ष)त्रियकुलेषु आदेयमुपजायते ।
अन्ते भूमीश्वरं प्राप्तं(प्तः) पश्चात् प्राप्त[ः] सुखावतीम् ॥ 24 ॥

इति श्रीवसुधारानामधारणीस्तोत्रं सम्यक्संबुद्धभाषितं समाप्तम् ॥

●

दुर्लभ ग्रन्थ परिचय

—जनार्दन पाण्डेय—

'धी:' के प्रथम अङ्क में गुह्यसमय-साधनों तथा द्वितीय अङ्क में धारणियों का परिचय दिया गया था। प्रस्तुत अङ्क में चर्यापद संबन्धी ग्रन्थों का विवरण दिया जा रहा है।

बौद्ध तन्त्रसाधना के चार—क्रिया, चर्या, योग और अनुत्तर—प्रकारों में द्वितीय प्रकार 'चर्या' है। अर्थात् साधक क्रियासिद्धि के बाद चर्या की साधना करता है, तब योग और अनुत्तर की। 'चर्या' पद की निरुक्ति श्री डोम्बी हेरुकपाद ने सहजसिद्धि में इस प्रकार की है—

वैद्यौषधिप्रवृत्त्या तु चर्या सेति निदर्शिता।
सेवया सेवकानां च चरणं चर्या इति स्मृतम्॥

(सहजसिद्धि 3।4)

जिस प्रकार कोई वैद्य रोगी के रोग का निदान कर उसके उपचार के लिये अनुकूल औषधि का उपदेश करता है और भिन्न-भिन्न रोगों में भिन्न-भिन्न औषधों के प्रयोग द्वारा रोगशमन कर रोगी को स्वस्थ कर देता है, इसी प्रकार गुरु भी साधक की योग्यता, साधनक्षमता, देश-काल की परिस्थिति आदि का विचार कर उसके अनुकूल आचरण का उपदेश देता है और साधक भिन्न-भिन्न साधनाओं की सिद्धि के लिये भिन्न-भिन्न आचरणों द्वारा प्रयत्न कर सिद्धि प्राप्त करता है। ये ही गुरूपदिष्ट आचरण 'चर्या' कहलाते हैं। जिनका बौद्ध तन्त्र के मर्मज्ञ सिद्धों एवं विद्वानों ने समय समय पर साधनाओं के अनुरूप प्रणयन किया है।

अभीष्ट की सिद्धि और आराध्य की प्रसन्नता के लिये मुद्राओं का प्रदर्शन करना पड़ता है। मुद्राओं की क्रिया अंगों के अवयवों का संचालन करने से होती है। इन आचरणों (चर्याओं) में यह संचालन उचित मात्रा में हो, उसमें न्यूनाधिक्य होने से साधना में कोई व्यतिक्रम न हो जाय, इसलिये प्रत्येक चर्या को राग और ताल से संबद्ध किया गया है, ताकि जिस राग और ताल में चर्या निबद्ध है, उसी की मात्राओं के अनुसार उतनी ही क्रिया मुद्राओं की हो सके।

इन चर्यापदों का केवल साहित्यिक या संगीत की दृष्टि से ही महत्त्व नहीं है, अपितु ये साधना के ही अंग माने जाते हैं और इनका तत्तत् साधनाओं में यथावत् प्रयोग होता है।

ये पद प्रायः लोकभाषाओं में ही रचे गये हैं, जिससे सामान्य साधक भी, जिसे कि शास्त्रों का प्रचुर ज्ञान नहीं है, साधना के रहस्य को समझ सके। इसी प्रकार कौन-कौन चर्यापद किस-किस साधना में प्रयुक्त होता है, इसका संकेत संग्रहकारों ने कुछ पदों को लिखने के बाद प्रत्येक संग्रह ग्रन्थ में किया है। जैसे—चर्यासंग्रह, पत्र सं० 29-30 में—

मण्डलाधिवासन गीत त्रिचक्रपूजा ॥ 21 ॥ गुरुमण्डलगीत मध्यमेरुपूजा ॥ 15 ॥ समाधिगीत अनिलपूजा ॥ 16 ॥ कलशपूजागीत मूलोत्तरपूजा ॥ 17 ॥ मामकिपूजागीत वर्णपूजा ॥ 19 ॥ धूपगीत सोहंपूजा ॥ 20 ॥ वाहि्लहि्यगीत त्रिभुजापूजा ॥ 26 ॥ गणचक्रगीत भास्वरपूजा ॥ 41 ॥ आदि ।

कुछ पदों के प्रारम्भ में ही "श्रीमूलाचार्यनृत्यगीत", 'आवरणपूजागीत" आदि लिख दिया है । बीच बीच में दी हुई संख्या संग्रह में दी हुई गीत की क्रम-संख्या है । यह क्रम प्रायः सभी संग्रहों में पाया जाता है ।

ये चर्यापद देखने में साधारण लोकभाषा के गीतों जैसे प्रतीत होते हैं, परन्तु इनमें साधनाओं के गूढ़ रहस्यों तथा मन्त्रों का समावेश रहता है, अतः इनका अभ्यास भी गुरूपदेशगम्य ही होता है। आचार्य सिद्ध विलासवज्र, लीलावज्र आदि मूर्धन्य विद्वानों ने भी, जिन्होंने संस्कृत में अनेक प्रौढ़ तन्त्र-ग्रन्थों एवं टीकाओं का प्रणयन किया है, इन चर्यापदों की रचना लोक-भाषा में ही की है । इसी से इन पदों की महत्ता का अवबोध होता है ।

ऐसे तीन चर्यासंग्रहों का विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

1. चर्यासंग्रह
2. चर्यापुस्तक
3. चर्याग्रन्थ

इन तीनों की मूलप्रतियों को नेपाल से माइक्रोफिल्म प्रोजेक्ट II के अन्तर्गत इंस्टीट्यूट आफ एडवांस वर्ल्ड रिलीजन स्टडीज़, न्यूयार्क ने माइक्रोफिश प्लेट के रूप में संरक्षित किया है । उन्हीं की फोटो प्रतियाँ केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान के ग्रन्थालय में उपलब्ध हैं, जिनके आधार पर निम्न विवरण प्रस्तुत है—

1. चर्यासंग्रह

ग्रन्थ चर्चा(र्या)संग्रह, **ग्रन्थकार** लीलावज्र आदि

माइक्रोफिश सं० MBB-1973-122, **फोटो प्रतिसं०** 5082

पत्रसंख्या 85, **पंक्ति प्रतिपत्र** 14, **अक्षर प्रतिपंक्ति** 34

लिपि नेवारी, **आधार** नेपाली कागज

आकार 8 × 26 से०मी०, **लिपिकाल** 1986 (वि०) 1049 (ने०)

पूर्ण,

प्रारम्भ

ॐ नमः श्रीचक्रसंवराय, ॐ नमो श्रीवज्रवाराह्यै, सिलामत या वचा कन्य जुल, राग—अभेदि ॥ ताल—माथ ॥

हाडाभरण क्रियाइ रे संवरा ।
धरयिक वाछरि देव्य शारतुल वारन्ते
मडिया मशाने मुकुट केश दिगम्बरा ॥ ध्रु० ॥
रे रे रे मोरु संवरराया समर सुन्दरि मोरु कीला 2
हम विरहिनी वज्रवाराहि फेद मेभिरे मोरु शाला ॥
शारिभोजय ने वलं सुहमयने कर्प्पूर भवईल वोरा 2
गगणानिल वर्णपंचारे गोदा मेरुमण्डल भवरिना ॥
त्रिय वउषट् हुं छादिगेर संवर पइसयि शुन्य भट्टारा 2
हम विरहिनी वज्रवाराहि तुम विनु देयमि अंधारा ॥
गावन्ति **लिलावज्र** ज्वलियाउ रे सतगुरु चरण आराध्य 2
समयानन्दे स्फुरियार मण्डल संवर वज्रवाराहि ॥

अन्त

नमामि श्रीचण्डमहारोषण पू ॥ 32 ॥ गीतपरमचेतो पू ॥ 49 ॥ गीत सर्ववृद्ध पू ॥ 27 ॥ गीत चण्डरोषण पू ॥ 62 ॥ गीत धूमांगारि पू० ॥ 63 ॥ गीत देवदिगम्बर पू० ॥ 91 ॥

पुष्पिका

इति श्रीचक्रमहापूजा या च वा कण्ठ समापत जुल पुरन ॥

शुभ संवत् 1986 नेपाल संवत् 1049 मिति चैत्र कृष्ण 20 गते बृहस्पति वार अष्टमि खुनुथ्व चचा-सफु सिद्ध या ना दिन जुल ॥

लिखित सवलवाहाल या श्रि मन्त्रसिद्धिमहाविहारया श्रि वज्राचार्य राइटर मोतिरत्ननं थवत दयका जुल, थो चचा-सफु सुनानं लोभ याय मदु लोभ यातसा अघोर पंचमहापातक लाइ जुल ॥ यदि शुद्धमशुद्धं वा शोधनियं महागुणैः ॥ शुभमङ्गलं भवन्तु सर्वदा ॥

2. चर्यापुस्तक

ग्रन्थ चर्यापुस्तक
माइक्रोफिस सं० MBB-1971-28, **फोटो प्रति सं०** 5081
पत्र सं० 36, **पंक्ति प्रतिपत्र** 10, **अक्षर प्रतिपंक्ति** 20
लिपि नेवारी, **आधार** नेपाली-कागज
आकार 8 × 16 से०मी०, **पूर्ण**

प्रारम्भ

ॐ नमः श्रीवज्रसत्त्वाय ॥ राग भैरव ॥ ताल झप ॥
अष्ट श्रृंगाचल कनकमणिमय नाना रतन प्रज्वलिता 2
चतुरद्वीप संगममध्य मेरुमाझे श्रीवज्रसत्व गुरु विराजिया ॥
सुमेरु कांचन मणिकिरण सयरा भास्वर स्फुट विराजिता 2

श्रीगुरु भास्करसदृश नाथा रत्नमण्डल निर्यातयामि ॥
प्रथमतर श्रीगुरुमण्डल अर्चिता चरणकमल शिरोगत धरिया 2
यंकारजाता पूर्वविदेहा रंकारजाता जम्बोद्वीपा 2
लंअपन गोदावलि वं उत्तरकुरु वे विविध रतना संपूर्णा 2
या उपद्वीप रा उपद्वीप ला उपद्वीप वा उपद्वीप 2
गजरतना पुरुषरतना अश्वरतना स्त्रीरतना 2
खड्गरत्न मणिरत्न चक्ररतना वा सर्वनिधान संपूर्णा ॥ 1 ॥

अन्त

गुह्येश्वरी-हेवज्र-कालचक्र-देवदेवोचरणे सर्वविघ्नमारविध्वंसिनि, चण्डरोषिण एते ईश्वरीमासे दशमी प्रपूजिता। दानपति शाक्यवंश धनसिंह विदिता प्रज्ञा पूर्णावती समप्रमुदिता।

जरम 2 श्री चतुरयुगेश्वरी शरणागती ॥

[इस ग्रन्थ में संग्रहकार ने अपनी ओर से देवसिंह यजमान द्वारा देवदत्त महाविहार में नेपाली संवत् 760 में तथा धनसिंह द्वारा रूपवर्ण महाविहार में ने० सं० 668 में संपन्न हुए यज्ञों को भी चर्याबद्ध किया है, इन्हीं के साथ ग्रन्थ समाप्त होता है।]

पुष्पिका नहीं है।

3. चर्याग्रन्थ

ग्रन्थ चर्याग्रन्थ , **ग्रन्थकार** लीलावज्र आदि
माइक्रोफिस सं० MBB-II 269 , **फोटो प्रति सं०** 5083
पत्र सं० 100 , **पंक्ति प्रतिपत्र** 12, **अक्षर प्रतिपंक्ति** 35
लिपि प्राचीन नेवारी, **आधार** नेपाली कागज
आकार 20×8 से० मी०, **पूर्ण**

प्रारम्भ

ॐ नमः श्रीपद्मनृत्येश्वराय।

[इसके बाद की 8 पंक्ति अस्पष्ट हैं, अन्तिम दो पंक्तियों से प्रतीत होता है कि यह लीलावज्र की वही चर्या है, जो चर्यासंग्रह के प्रारम्भ में आई है—हाडाभरण क्रियाइ रे संबरा—आदि।]

अन्त

कोलाइया गीत ॥ नमः हुं फट् ॥ 20 ॥ देवचर्चा मानगु ॥ चलि हुं फट् पूजागीत ॥ ॐ नमो श्रीवज्रसत्त्वाय नमः ॥ वज्रवाराही या नृत्यकाय राग—धनाश्री ताल—जति। सर्वाक्रान्ता जुला।

इसके बाद 3 पत्रों में चर्याओं की क्रमानुसार सूची दी गई है।

उपर्युक्त तीनों ग्रन्थों में आई हुई चर्याओं का विवरण आगे दिया जा रहा है।

1. चर्यासंग्रह

क्रमांक	ग्रन्थांक	चर्यापद प्रतीक	राग	ताल	कर्ता	पत्र सं०	विशेष
1	1	हाड़ाभरण क्रियाइ रे संवरा	अहेरि (हरि)	माथ	लीलावज्र	1	
2	2	धर धरहु धर धराधरे	विभास	—	सुरतवज्र	1-2	
3	3	....सेबलादखण्ड रवि शशि	,,	एकताल		2	रविनमस्कार
4	4	धर्मधातु जिनहृदया	मालव	,,		2	
5	5	विश्वसरोरुह विधु बिम्बा	गान्धारी	,,	परमादिवज्र	2-3	
6	6	हरसिर मुकुट किरन्ति मणि	गान्धारभैरवी	झप		3	
7	7	ए महिमण्डल मेरु समुद्रा	भैरवी	,,	सुरतवज्र	3	
8	8	त्रिभुवनज्वलित सुभूति	गान्धारभैरवी	,,		3	
9	9	अकाल संजात पृथिवन इन्द्रे	भैरवी	एकताल	कुलिशवज्र	4-5	चण्डरोषणनृत्य
10	10	त्रियत्रिश नाथ क्रियायि रे	कामोड	षट्कंकाल	,,	5	बुद्धवरनृत्य
11	11	खवज्र कुवज्र हुंकारा रे	भैरवी	झप		5-7	
12	12	प्रज्वलित हुंकारोद्भव मूरति	कामोड	षट्कंकाल		7-8	
13	13	हूंकार संजात इन्द्रनीलसद्युति देहा	हिण्डोल	माथ		8	
14	14	प्रमोदित दशदिश भूमिसुन्दरी	मधुमती	दूर्जमान	परमादिवज्र	8-9	मूलाचार्यनृत्य
15	15	मध्यमेरु महामणि कर्णक	भैरवी	झप	,,	9-10	गुरुमण्डलगीत
16	16	अनिल अनल जल जो भुवमाझ	पदमञ्जरी	माथ	,,	10	आदिपूजागीत

क्रमांक	ग्रन्थांक	चर्यापद प्रतीक	राग	ताल	कर्ता	पत्र सं०	विशेष
17	17	अनुत्तरतथता वंकारस्वभावे	ललित	झप	,,	10-11	कलशपूजागीत
18	18	त्रिनि लोयन चउवक्क विहारा	गान्धारभैरवी	,,	पवनवज्र	11	अग्निस्थापनगीत
19	19	रक्तवर्ण त्रीणि लोयन सुन्दरि	नाट	जति	वाग्वज्र	11-12	मामकीपूजागीत
20	20	नमो हुं अकार रूप धरु धरु	भैरवी	त्रिभुजा		12	ध्रुवानृत्यगीत
21	21	त्रिचक्र रविशशिमण्डल माझ	शृङ्गारमालती	माथ		12-13	देवपूजागीत
22	22	ज्वलित वज्रा नर रविशशि	पंचम	झप		13	आहुतिगीत
23	23	सर्वाक्रान्ता महासुखक्षरे	धनाश्री	जति	समरसवज्र	13-14	वज्रवाराहीनृत्यगीत
24	24	हूं बीजसंभव सम देहा	कामोड	षट्कंकाल	कुलिशवज्र	14	सद्य:पूजागीत
25	25	द्विभुज एकमुख रक्तवर्ण त्रिनेत्रा	शृङ्गारमालती	माथ	सुरतिवज्र	15	वज्रवाराहीनृत्यगीत
26	26	कोलायि लेखिया बोला	तोडी	,,		15	पञ्चधारागीत
27	27	सर्वबुद्ध विबुद्ध मंडिता	तारावलो	,,	कर्णपा	15	सिलाहुतिगीत
28	28	उदिता तरइ या अवधूता	विभास	माथ	पवनवज्र	16	
29	29	विविह विहरु रे या रविशशिवदने	गान्धारभैरवो	झप		16-17	
30	30	त्रिदलपद्म गुह्यमण्डल	,,	,,	आर्य कुलदत्त	17	
31	31	जय वाच्छलि हेरुवे घरणि	पंचम	त्रिभुजा	सुरतवज्र	17	
32	32	अवनिनिहित जानु नील	कामोड	षट्कंकाल		18	
33	33	अवनिनिहित वाम जानु	,,	,,		18-19	
34	34	अतसिकुसुम द्युति देह प्रभास्वरा	वसन्त	दूर्जमान		19	
35	35	जिनभुव अवधू हेरु बुलाया	मालव	माथ	कुलिशवज्र	19	
36	36	त्रिहण्डा चापइ योगिनि देह	कर्णाटी	झप	गोदारिपा	20	

धी:

क्रमांक	ग्रन्थांक	चर्यापद प्रतीक	राग	ताल	कर्ता	पत्र सं०	विशेष
37	37	चक्रि कुण्डल कण्ठि रोचक	गौड़ी	एकताल	कर्णपा	20	
38	38	जय जय वाच्छलि समरसभास्करि	भैरवी	माथ	अद्वयवज्र	21	
39	39	द्वंबिनि सरोवर विरासइ कइशे	गौड़ी	,,		21	
40	40	षोडश हायन तरुण कियासिल	ललित	झप	सुरतवज्र	21-22	अभ्यन्तरसमुद्भूतशून्यगीत
41	41	भास्वर षडमुह वज्रचित्त रे	भैरवी	एकताल	,,	22	
42	42	गजजिन उद्धर हाथ धरइया	,,	,,		23	
43	43	उरगाभरण श्रीरितन शोभा	ललितगुर्जरी	जति	अमोघवज्र	23-24	
44	44	अखय निरंजन अद्वय अनुपम	निर्वेद	माथ		20	
45	45	निर्मल गगन तुम्बमित अग्रे	कर्णाटी	झप		24-25	
46	46	वज्रि घोरि चण्डालि वेतालि देवि	मालव	माथ		25	
47	47	वज्रजोगिनि हेरु बुलाया	मालती	,,		25	
48	48	नमामि नमामि श्रीवज्रयोगिनि	मालती	,,		25-26	
49	49	उदयागिरि तलगति संकाशा	नाट	जति		26	
50	50	श्रीहेवज्र नैरात्मा देवि	कर्णाटी	झप		27	
51	51	विषय विषय विल पवन संयोगे	ललित	,,	सुरतवज्र	27	
52	52	वज्रमय भूमिशोधिय मण्डल	मधुमतो	दूजंमान	तिलावज्र	28	भूमिशोधनगीत
53	53	गन्धमण्डलमध्य वकारसंजाता	मल्लार	माथ		28-29	वसुधाराधिवासनगीत
54	54	निर्मलाम्बुजमध्यगतकलश	भैरवी	एकताल		29	कलशाधिवासनगीत
55	55	प्रविशतु भगवत महामोक्षपुर रे	,,	,,		30	
56	56	सहज सरोरुह हेरु बुलाया	नाट	जति		31	गुह्याभिषेकगीत

क्रमांक	ग्रन्थांक	चर्यापद प्रतीक	राग	ताल	कर्ता	पत्र सं०	विशेष
57	57	वाम दहिन ए दुइ धरणे	मालती	माथ	वाग्वज्र	31	सहगानगीत
58	58	कवन रूप लोकेश्वर कवन बुद्ध	नाट	जति	अवधूतपा	32	सद्यःपूजागीत
59	59	सकल जगतगुरु संवरवीरा	,,	,,		32	
60	60	सुप्रतिमंडित मंडलचक्रं	तोडी	माथ		33	तथागतचर्या
61	61	कोइले वसा वाजि रे वीरा	वैराटी	झप		33	
62	62	चण्डोग्रमसाने शिरिषवृक्षा	भैरवी	एकताल	कर्णपा	34	बलिपूजागीत
63	63	धूमांगारि चण्डकरालि	गान्धारभैरवी	वसुमती		35	धूमांगारिपूजागीत
64	64	निर्माणादि चतुःषष्ठिदल सरोरुह	भैरवी	एकताल	सुरतवज्र	36	देवपूजागीत
65	65	गोकुदहन पंचज्ञानस्वरूप	गान्धारभैरवी	झप		37-38	पंचकुंभपूजागीत
66	66	षड्योगिनि देवि त्रिभुवनव्यापिनि	कर्णाटी	,,		38	षड्योगिनिपूजागीत
67	67	ॐ आः हुं फट् अनन्तरे स्वाहा	भैरवी	,,		38-39	अष्टश्मशानगीत
68	68	द्विभुज एकमुख रक्तवर्णा	विभास	माथ		39	
69	69	पंचसूत्र गुरुतत्व त्रिपद्मा	नाट	जति	कुलदत्तवज्र ?	40	सूत्रस्थापनगीत
70	70	लक्ष्मि भणहि न षट्सूत्र	मधुमती	दूर्जमान	लक्ष्मि	40	पंचपूजागीत
71	71	शशिया किरण जोति ललितासन	मल्लार	माथ		41	
72	72	कुंभनिराजन पंचज्ञानस्वभाव	भैरवी	झप		41	
73	73	महापंचपात्र समया वीर तू बइठा	ललित	,,	कर्णपा	42	पात्रपूजागीत
74	74	मेरु मंडल पर जोराल देवासुर	मालव	माथ		42	हस्तपूजागीत
75	75	पूर्वद्वार डाकिनि श्वेतवर्णा	तोडी	,,		43	द्वारपूजागीत
76	76	वाराहि व्यवस्थित दिव्य त्रिदल	,,	,,		43	

धौः

क्रमांक	ग्रन्थांक	चर्यापद प्रतीक	राग	ताल	कर्ता	पत्र सं०	विशेष
77	77	पूर्वद्वारा सित उदयागिरि	भैरवी	झप		44	
78	78	चंद्र आदित ले सफलइ	वसन्त	झप		45	
79	79	अष्ट नारि अष्ट प्राकार	पंचम	माथ		45	
80	80	शून्य निरंजन परम प्रभु	मालिनी	,,		46	
81	81	चित्तचक्राष्टारे हूंबीज	भैरवी	,,	कुलिशवज्र	47	
82	82	पूर्व दिगपति अतिनीलवर्ण	कामोड	षट्कंकाल		48	
83	83	भास्कर बिन्दु मंडल माझ	वसन्त	माथ		48	
84	84	नमामि नमामि श्रीहेरुक चन्द्रशेखर	भैरवी	त्रिताल		49	
85	85	जिनवरजननि प्रभास्वर रमणि	वसन्त	झप		50	
86	86	हुं हुं हुं देहधरु संसारतरु	रामकली	माथ		50	
87	87	सामरय हुतभुज कमल धरइ	मरुत	दूर्जमान		50	
88	88	परमरतो न च भाव न भावक	विभास	झप		51	
89	89	देव दिगम्बर धवर करति	भैरवी	त्रिभुजा		51	
90	90	वाम खप्पर धर दहिन कर्ति	गौड़ी	माथ		52	
91	91	सकल जगत गुरु संवर वीरा	नाट	जति		52	
92	92	सर्वा याले कालविकाले	—	—	कर्णपा	53	बलिदापनगीत
93	93	नील गयन सोभित अंगे	कर्णाटी	झप		54	
94	94	षोडश भुज चतुर्मुख त्रिनेत्रा	शृङ्गारमालती	माथ		54	
95	95	हुंकारसंजात शुक्रदेहा	तारावली	,,		54	
96	96	नील हुंकार प्रज्वलित किरणा	कर्णाटी	झप		54-55	

क्रमांक	ग्रन्थांक	चर्यापद प्रतीक	राग	ताल	कर्ता	पत्र सं०	विशेष
97	97	कोटिन कर ते रुण्डमाल छादे	विभास	झप		55	
98	98	करय करोटक षोडशभुजा	गुर्जरी	माथ		55	
99	99	कृष्णवर्ण तनु द्वादशभुज दिव्ये	वसन्त	झप		55-56	
100	100	गौरि चौरि वैतालि घस्मरि	मालव	झप	अमोघवज्र	56	
101	101	विश्वकमलोपरि पर्यंकपाल	मल्लार	,,		56	
102	102	ऊर्ध्व रक्तनेत्र पिंगल केशा	रामकली	जति	कर्णपा	56-57	
103	103	दिनकर मंडल मंदिरे	तोड़ी	माथ		57	
104	104	चक्रि चक्रि सोदि रे देहिनि	गौड़ी	झप		57	कायचक्रगीत
105	105	नाभिमंडल माझ उदभाविता	विभास	माथ	सुरतवज्र	58	
106	106	जिनजिक रत्नाधृगालौकिक	भैरवी	झप	,,	58	
107	107	हूंकार संजात सहजानंदरूप धरा	पंचम	माथ	गितागुरु	58	
108	108	विश्वसरोरुह दिनेशमण्डल	कर्णाटी	झप		59	
109	109	काकानन भीमांग नीलवर्ण	कामोड	षट्कंकाल		59-60	चण्डोदितपूजागीत
110	110	द्विभुज एकमुख त्रिनेत्र	शृङ्गारमालती	माथ	रत्नवज्र	60	
111	111	गजमुख त्रिनयन तांडव	धनाश्री	—		60	
112	112	पञ्चकपाल धारितमौलि	तोडी	षट्कंकाल	शाश्वतवज्र	61	
113	113	एकवदन रत्नमुकुट अलंकृता	मल्लार	झप		61	
114	114	उरगाभरण श्रीललितमुखशोभा	गुर्जरी	जति	अमोघवज्र	61-62	
115	115	जिनवरतनय त्रिभुवनश्रीका	रामकली	जति		62	इसमें योगी बन्धुदत्त और नरेन्द्रदेव का नाम आया है।

धौः

क्रमांक	ग्रन्थांक	चर्यापद प्रतीक	राग	ताल	कर्ता	पत्र सं०	विशेष
116	116	मधुरिपुत्रिपुरा दुइ निकु राला	वसन्त	षट्कंकाल	पवनवज्र	62	
117	117	शतशत भाव्य तारामंडल करा	वैराटी	माथ	कर्णपा	63	
118	118	नमामि नमामि जिनधातुकरण्डक	भैरवी	त्रिभुजा		63	
119	119	नमामि नमामि जिनधर्मधातुभू	नाट	जति	वाग्वज्र	63	इसमें आचार्य बन्धुदत्त और चन्द्रमल्लदेव का नाम आया है।
120	120	सकल जगत संसारु पारु	"	"		64	
121	121	कमल विकासित स्थिति भास्वर	"	माथ		64	
122	122	श्रीमंजुनाथवर महाजिनविजया	कर्णाटी	झप		65	
123	123	मायाजाल बिम्बुसदृश सरीरा	देश	माथ	अवधूत चन्द्रपा	65	
124	124	पवन मंडल पंबीज जपइ	भैरवी	झप	रत्नवज्र	65	
125	125	त्रिदलकमल वर्ण कुसुम संज्ञा	भास	माथ		65-66	
126	126	अष्टचत्वारिंशत पद्मदल माझ	तोडी	माथ	ॐकारवज्र	66	
127	127	लम्बकर्ण लम्बोदर त्रीणि लोचना	वैराटी	"		66	
128	128	नमामि २ श्रीहारति महायक्षिणी	भैरवी	त्रिभुजा	मंजुवज्र	67	
129	129	मृगेन्द्रधारोपरि मण्डित	कामोड	षट्कंकाल		67	
130	130	नमामि २ श्रीमंजुवज्र	भैरवी	—		67-68	
131	131	पवनजलशिखिभू मेरु माँझे	शृङ्गारमालती	माथ		68	
132	132	नमामि श्रीचण्डमहारोषण देवा	भैरवी	झप		69	
133	133	विश्वकमल मध्ये हुंकारसंभव	मल्लार	माथ	रत्नवज्र	70	

क्रमांक	ग्रन्थांक	चर्यापद प्रतीक	राग	ताल	कर्ता	पत्र सं०	विशेष
134	134	नमामि श्रीहेरुक चन्द्रशेखर वीरा	भैरवी	त्रिभुजा		70	
135	135	शाश्वतवज्रवीरा जितमौलि नगण	देश	माथ	परमादिवज्र	71	
136	136	जय विघ्नान्तक हुं जोगिनि	ललित	झप	सुरतवज्र	71	
137	137	हूंबीज संजात धवलवर्णा	भैरवी	षट्कंकाल		71·72	
138	138	इन्द्र यमान्तक नील सहन	,	झप		72-73	
139	139	कल्पा दिव्ये स्थित आज्ञास्थे	ललित	,,	सुरतवज्र	73	
140	140	पोतलकानगरे आराधिया रे	भास	,,		73-74	
141	141	पद्मोपरि इन्दुमण्डलासनस्था	नाट	जति	महासुखवज्र	74	
142	142	विश्वकमलोपरि बिन्दुबिम्बा	मल्लार	झप		74	
143	143	सरोजपत्रनयन त्रिभुवननाथ	रामकली	माथ	रत्नवज्र	74-75	
144	144	गजमुखत्रिनयन तांडवपदनित्या	धनाश्री	जति		75	
145	145	अष्टक्षेत्रपाल दिगविदिगभूषण	भैरवी	झप		75	
146	146	सिंहादिश्मशाने बोधिवृक्षा	भैरवी	झप		75-76	
147	147	कनकवर्ण एकमुख त्रिनेत्रा	नाट	जति		76	
148	148	हूंकारसंभव विश्ववज्र सुवज्रा	मालव	माथ	महासुखवज्र	76	
149	149	द्विमुख द्विभुज लोहितवक्त्रा	पंचम	झप		76-77	
150	150	विश्वांभोजा चन्द्रोपरि मध्यस्थिता	भास	माथ	रत्नवज्र	77	
151	151	नीलगननशोभिता	कर्णाटी	झप		77	
152	152	अरपंचन श्रीमंजुकुमारा	ललित	,,		77	
153	153	पूर्व ब्रह्मा पति हंसमारूढ़ा	भैरवी	,,		78	

धी:

क्रमांक	ग्रन्थांक	चर्यापद प्रतीक	राग	ताल	कर्ता	पत्र सं०	विशेष
154	154	बलिपूरण चापइ चउ मारा	नाट	जति		78	
155	155	कुलिश पद्मभव जिनधातु बीज	भास	माथ		78-79	
156	156	प्रत्यालीढपद सर्वज्ञाता	धनाश्री	जति	अभयंकरनाथ	79	
157	157	दिनमणिमंडल वज्राग्रा	असावरी	माथ	सुरतवज्र	79	
158	158	नमामि २ श्रीपूर्णवज्रेश्वरि	भैरवी	झप		79-80	
159	159	अहूठ हाठे चउरासी सिद्धा	मल्लार	माथ		80	
160	160	रक्तपशुदेह द्विभुज काकास्या	कर्णाटी	झप	रत्नवज्र	80	
161	161	पंचतथागतमया कुलिशमया	ललित	,,	कर्णपा	80-81	
162	162	उदितभुवनकमला सकिरण ललित	धनाश्री	माथ		81	
163	163	भानुमण्डलमाझ ज्वलितहुंकारा	मल्लार	माथ	अनुपमवज्र	81-82	
164	164	अगनित रूके खर्वा दारण देवि	मधुमती	दूर्जमान	सहजानन्द	82	
165	165	पञ्च डाकिनी वीर वीरेश्वरी	मालव	माथ		82	

2. चर्यापुस्तक

क्रमांक	ग्रन्थांक	चर्यापद प्रतीक	राग	ताल	कर्ता	पत्र सं०	विशेष
166	1	अष्ट शृङ्गाचल कनकमणिमय	भैरव	झप		1-2	
167	2	अनिल अनल जल जोवन माझ	पद्मांजलि	माथ		2-3	
168	3	कलशार्चनविधि पंचोपहार पूजयामि ते	भैरव	दूर्जमान		3-4	
169	4	कुंभनिभांजन पंचज्ञानस्वभावा	वसन्तललित	,,		5-6	
170	5	रक्तवदन त्रिपुरोपनिषूदनि	नाट	झप	वाग्वज्र	6	
171	6	गोकुदहन पंचज्ञानस्वभाव	गान्धार	,,		7	

3

क्रमांक	ग्रन्थांक	चर्यापद प्रतीक	राग	ताल	कर्ता	पत्र सं०	विशेष
172	7	भानुमण्डल माझ ज्वलितहुंकारा	नाट	दूर्जमान	अनुपमवज्र	7-8	
173	8	त्रिदल सरोरुह दिनकर मण्डल	नाट	एकताल	पद्मवज्र	8-9	
174	9	जय वाच्छलिदेवि हेरुकदेव घरने	कान्हरा	माथ	सुरतवज्र	9-10	
175	10	अमल त्रिदलसरोरुह विराजिता	गुर्जरी	,,		10-11	
176	11	मंडलसंपूर्ण द्वादशभुज चउ चारु	पद्मांजलि	,,		11	
177	12	पंच तथागत मेरिया रे	भैरवी	झप	कर्णपा	12	
178	13	नम हूं आकारेण रूप धरु	,,	दूर्जमान		13	
179	14	नमामि 2 जिनधातुकरंडक	भैरव	,,		13-14	
180	15	नमामि 2 धर्मधातु वागीश्वर	,,	माथ		14	
181	16	त्रिय विश्वमय मनोभङ्ग शयना	निर्वेद	,,	सरुवरवज्र	15	
182	17	त्रिचक्र रविशशिमंडल माझ	मधुमती	दूर्जमान	सहजानन्द	16	
183	18	अमलपद्मोपरि संस्थित	रामकली	माथ	जिनहर्षवज्र	18	
184	19	हरिदश्वसुतानन राजिवलोचन	,,	,,	सुधाहर्ष	19	
185	20	कमलविकासित स्थिति दृढासन	,,	,,	परमादिवज्र	20-21	
186	21	श्रीकच्छपाल गिरि भुवन निवासित	,,	,,		21	
187	22	पवनज्वलन नील धरणिमंडले	कान्हरा	षट्कंकाल	सुधाहर्ष	22	
188	23	अष्टदल सरोज उद्भव प्रकाशित	वसन्तललित	दूर्जमान		23	
189	24	वाम खप्पर धर दहिन कर्ति	वैराटी	माथ		24	
190	25	धर्मराजशासन यमराजवाहन	भैरव	षट्कंकाल	अमृतवज्र	25	
191	26	अवनिनिहित वामजानु रे	कान्हरा	,,		26-27	

धौः

क्रमांक	ग्रन्थांक	चर्यापद प्रतीक	राग	ताल	कर्ता	पत्र सं०	विशेष
192	27	आ हुं फट् अन्ते स्वाहा	भैरव	जति		27-28	
193	28	उदिताचल लेय पवनधूता	विभास	माथ	पवनवज्र	28-29	
194	29	हुं हुं हुं देह धरु संसारु तरु	,,	भुक्तमाथ		29-30	
195	30	हाड आभरण क्रियायि रे संवरा	गौडी	दूर्जमान	लीलावज्र	30-31	
196	31	चक्रि कुंडल कंठि रोचक मेखलाभूषितं	मातंगिनी	एकताल	कर्णपा	31-32	
197	32	गजमुख त्रिनयन तांडवमूरति	धनाश्री	,,		32-33	
198	33	प्रणवमणिककेशं ब्रह्मसोष्णीषगीतं	शृंगारमालती	माथ	विद्यावज्र	33-34	संस्कृत में है।
199	34	अबद नेपालिक बिंदु सशैलं	मधुमती	दूर्जमान		35-36	
200	35	नेपालहायन वसुरसमातृका	वसन्तललित	माथ		36-37	

3. चर्याग्रन्थ

201	1	अस्पष्ट है					
202	2	धर धरइ धराधर धार रे	विभास	माथ	सुगतवज्र	1-2	
203	3	धर्मधातु जिन हृदयानंदमालिका	गान्धारभैरवी	—		2-3	
204	4	विश्वसरोरुह बिन्दु बिम्बा	,,	—	परमादिवज्र	3	
205	5	हरशिर मुकुट किरीटमंडिता	भैरवी	झप	सुगतवज्र	3-4	
206	6	त्रिभुवन ज्वलित मरुति	गान्धारभैरवी	झप		4	
207	7	अकार संजात पुच्छियत इन्द्रे	भैरवी	एकताल		4-5	मातृकापूजागीत
208	8	श्रीमंजुनाथ क्रियाइ रे	कामोड	षट्कंकाल	कुलिशवज्र	5-6	
209	9	ॐ ख वज्रधृक वज्रहुंकारा रे	भैरवी	झप		6-8	

क्रमांक	ग्रन्थांक	चर्यापद प्रतीक	राग	ताल	कर्ता	पत्र सं०	विशेष
210	10	प्रज्वलित हुंकारा भेदमूरति इन्द्रनीला	कामोड	षट्कंकाल		8-9	
211	11	हुंकारसंजात इन्द्रनील समदेहा	हिंडोल	माथ		9	
212	12	प्रसादितादि दसभूमि सुंदरी	मधुमती	दूर्जमान	परमादिवज्र	9-10	मूलाचार्यनृत्यगीत
213	13	मंजीर महामणि कनक राजिते	भैरवी	झप		10-11	
214	14	अनिल अनल जलधातु	पद्मांजलि	माथ		11	
215	15	अनुभव तथता वंकारसंभव	ललित	झप		11-12	कलशपूजागीत
216	16	त्रिनि लोयन चउ ब्रह्मविहारा	गान्धारभैरवी	,,		12-13	अग्निस्थापनगीत
217	17	रक्तवर्ण त्रीणि लोचन	नाट	जति	सुरतवज्र	13	
218	18	ॐ नमः हूंकाररूपधरु	भैरवी	त्रिभुजा		13	
219	19	त्रियकर विगणित तर माले	मालती	माथ		13-14	देवपूजागीत
220	20	वलि··········ॐ कारनादरूपी	पंचम	झप	लीलावज्र	14-15	
221	21	सर्वाक्रान्ता महासुखफल	धनाश्री	जति	समरसवज्र	15	
222	22	हुं बीजसंभव खसमदेहा	कामोड	षट्कंकाल		16	सद्यःपूजागीत
223	23	चतुर्भुज एकमुख रक्तवर्ण त्रिनेत्रा	श्रृंगारमालती	माथ		16	
224	24	कोलाइ लेखिया धारा	तोडी	माथ		16-17	पञ्चधारागीत
225	25	सर्वमुख विबुद्धमण्डिता	भैरवी	,,	कर्णपा	17	
226	26	हाडाभरण क्रियायि रे	,,	,,	लीलावज्र	17-18	मूलाचार्यनृत्यगीत
227	27	उदिता तरयिया पवनधूता	विभास	,,	पवनवज्र	18	
228	28	विविह विहरु रे मार विगणित देवा	मालती	झप		18-19	
229	29	त्रिदलपद्म गुह्यमंडल महासुखकरे	गान्धारभैरवी	,,	कुलदत्त आचार्य	19	

क्रमांक	ग्रन्थांक	चर्यापद प्रतीक	राग	ताल	कर्ता	पत्र सं०	विशेष
230	30	जय वाच्छलि हेरुक घरणि	पंचम	त्रिभुजा	सुरतवज्र	19-20	
231	31	अवनि निहित जानु निरंजनदेवा	कामोड	षट्कंकाल		20	
232	32	अवनिनिहित वामजानु	,,	,,		20-21	
233	33	अतसि कुसुम दुति देह युगाम्बर	वसन्त	दूर्जमान		21	
234	34	त्रियभुव अवधू हेरु जो लाया	मालती	माथ		31-22	
235	35	त्रिभुजा चापयि योगिनि हेरुक	कर्णाटी	झप	गोदारिपा	22	
236	36	चक्रि कुंडल कंठि रोचक	गौड़ी (खडाश्रि)	एकताल	कर्णपा	22-23	
237	37	जय जय वाच्छलि सयन सभास्वलि	विभास	माथ		23	
238	38	सरोवर विरासइ कयिणे	खडश्रि	झप		23-24	मूलाचार्यनृत्यगीत
239	39	सोहं सहाय न तरुण कि पोणिल	ललित	,,		24	अभ्यन्तरमुद्रा……
240	40	भास्वर चउमुह वज्रचिह्न	भैरवी	एकताल	सुरतवज्र	25	गणचक्रगीत
241	41	गज जिन ऊर्ध हाथे धरिया	,,	,,		25-26	,, ,,
242	42	उरगाभरण जीवित तरुशोभा	गुर्जरी	जति	अमोघवज्र	26	
243	43	अखय निरंजन अद्वय अनुपम	निर्वेद	माथ		26 27	
244	44	निर्मल गयन सुसोहित अति	कर्णाटी	झप		27	
245	45	वज्रिणि श्रीवेतालि चण्डालि	मालव	माथ		28	
246	46	वज्रयोगिनी हेरु बुलाया	मालती	,,		28	
247	47	नमामि नमामि श्रीवज्रयोगिनी	,,	,,		28-29	
248	48	उदयगिरि तलगति संकाशा	नाट	जति		29-30	विद्याधरीदेवीगीत
249	49	श्रीहेवज्र नैरात्मा देवी त्रिभुवननाथा	कन्नड़ि	झप	वाग्वज्र	30	

क्रमांक	ग्रन्थांक	चर्यापद प्रतीक	राग	ताल	कर्ता	पत्र सं०	विशेष
250	50	विषय विषय विनय वन संयोगे	ललित	झप	सुरतवज्र	30-31	शेषबलिगीत
251	51	वज्रमय भूमि शोधिय मण्डल	मधुमती	दूर्जमान	लीलावज्र		भूमिशोधनगीत
252	52	गंधमण्डलमधे वंकार संजाता	मल्लार	माथ		32	वसुन्धराधिवासनगीत
253	53	निर्वाणाम्बुज मध्यगत करणा	भैरवी	एकताल		32	करणाधिवासनगीत
254	54	प्रविशतु भगवत महामोक्ष पुर रे	,,	,,		34	
255	55	सदल सरोरुह हेरु बुलाया	नाट	जति		35	गुह्याभिषेकगीत
256	56	वामा दहिने ए दुयि घरणी	मालती	माथ	वाग्वज्र	35	सहभोजनगीत
257	57-58	कवन रूप लोकेश्वर कौने रूप बुद्ध	नाट	जति		36	सद्यःपूजागीत
258	59	भूपति मंडित मंडल चक्रं	तोड़ी	माथ		37	
259	60	कोइ रे वंशा बाजि न वीणा	वैराटी	झप		37-38	
260	61	···गाने शिरसवृक्षा वासुकिनागा	भैरवी	एकताल		38	बलिपूजागीत
261	62	धूमांगारी चंडकराली	गान्धारभैरवी	—		39	धूमांगारीपूजागीत
262	63	निर्माणादि चतुःषष्टि दल	भैरवी	एकताल		40	
263	64	गोकुदहन पञ्चज्ञानस्वरूप	गन्धारभैरवी	झप		42	
264	65	षड्योगिनी देवि त्रिभुवनव्यापिनि	कर्णाटी	,,		43	षड्योगिनीपूजागीत
265	66	ॐ आः हुं फट् अनन्तरे स्वाहा	भैरवी	,,		43-44	अष्टश्मशानपूजागीत
266	67	द्विभुज एकमुख रक्तवर्णा	विभास	माथ		44	
267	68	पञ्चसूत्र गुरुदेवा	नाट	जति		46	
268	69	लक्ष्मि भणहि णेसर सूत्र	मधुमती	दूर्जमान	लक्ष्मि	46	
269	70	शशिया किरणदुति ललितासन	मल्लार	माथ		46-47	

क्रमांक	ग्रन्थांक	चर्यापद प्रतीक	राग	ताल	कर्ता	पत्र सं०	विशेष
270	71	कुंतनिभांजन पञ्चज्ञान स्वभाव	भैरवी	झप		47	
271	72	महापंचपात्र समयाचारी	ललित	माथ	कर्णपा	48	
272	73	मेरुमंडल पर जोभल पवित	मालती	,,		48-49	
273	74	पूर्वद्वार डाकिनी श्वेतवर्ण	तोडी	,,		49	ग्रन्थांक 75 ग्रन्थ में नहीं है।
274	76	पूर्वद्वारा सित उदयागिरि	भैरवी	झप		49-50	
275	77	चन्द्र आदित लसंत फल	वसन्त	,,		50 51	
276	78	अष्ट नाडी अष्ट प्राणका रे	पञ्चम	माथ		51	
277	79	शून्य निरंजन परम प्रभु	भैरवी	,,		52	
278	80	चित्त चक्राष्टारे हुंबीज संजाता रे	ललित	,,	कुलिशवज्र	53	बहिश्चित्तचक्राष्टारनृत्यगीत
279	81	पूर्वदिगपति अति नीलवर्णा	कामोड	षट्कंकाल		54	काकास्यादिनृत्यगीत
280	82	भास्कर बिन्दु मण्डल माझ संस्थिता	वसन्त	माथ		55	
281	83	नमामि नमामि श्रीहेरुकचन्द	भैरवी	त्रिभुजा		55-56	
282	84	जिनवरजननि प्रभास्वररमणि	वसन्त	झप		57	
283	85	हुं हुं हुं देह धरु संसार तरु	रामकली	माथ		58	
284	86	सकल जगतगुरु संवरवीरा	नाट	जति		58	
285	87	परमनभो नच भाव न भावक	विभास	झप		59	
286	88	समिरय हुतभुज कमल धरयि	मधुमती	माथ		59	
287	89	वाम खप्पर धर दहिन कर्ति	गौड़ी	,,		60	
288	90	देवदिगंबर धवलकर गजचर्मविभूषित	भैरवी	त्रिभुजा		61	
289	91	सर्वाधारे कालविकाले स्फूलिया	—	—	कर्णपा	62	

क्रमांक	ग्रन्थांक	चर्यापद प्रतीक	राग	ताल	कर्ता	पत्र सं०	विशेष
290	92	नीलगयन सोभित अंगे	कर्णाटी	झप		63	
291	93	षोडशभुज चतुर्मुख त्रिनेत्र	श्रृङ्गारमालती	माथ	जिनसिद्धि	63-64	
292	94	हूंकार संजात शुक्लदेहा	तारावली	,,		64	
293	95	नील हुंकार प्रज्वलित किरण	कर्णाटी	झप		64	
294	96	कर्ति ए करत देवि रुंडमाल छाजे	विभास	,,		65	
295	97	करकरोटक षोडशभुजा	गुर्जरी	माथ	कर्णपा	65	
296	98	कृष्णवर्णतनु द्वादशभुज ग्रीवा	वसन्त	झप		66	
297	99	गौरी चौरि वेतालि घस्मरी	मालव	,,	अमोघवज्र	66	
298	100	विश्व कमलोपरि सव्य कपाल	मल्लार	,,		67	
299	101	ऊर्द्ध रक्तनेत्र पिंगलकेशा	रामकली	जति	कर्णपा	67	
300	102	दिनकर मंडल मन्दिरे वा रविशशि	तोडी	माथ		67-63	
301	103	चक्रि चक्रि मोदिरे दहिन चण्डालि	गौड़ी	झप	गोस्वामिनी	68	
302	104	नाभिमंडल माझ उत सेविता	विभास	माथ	सुरतवज्र	69	
303	105	जिनजिक रत्नधृक आलोकिक	भैरवी	झप		69	
304	106	हुंकार संजात सहजानंद रूपधरा	पञ्चम	माथ	गितागुरु	70	रत्नवज्र ने गाया है ।
305	107	विश्वसरोरुह दिनेशमण्डल	कर्णाटी	झप		70-71	
306	108	काकानन भीमांग नीलवर्णभासा	कामोड	षट्कंकाल		71	
307	109	द्विमुख एकभुज त्रिनेत्र नीलवर्ण	श्रृंगारमालती	माथ	रत्नवज्र	72	
308	110	गजमुख त्रिनयन तांडव परवत	धनाश्री	जति		72	
309	111	पंचकपाल धालि(रि)त मौली	तोडी	षट्कंकाल	शाश्वतवज्र	73	

धी:

क्रमांक	ग्रन्थांक	चर्यापद प्रतीक	राग	ताल	कर्ता	पत्र सं०	विशेष
310	112	एकवदन रत्नमुकुट अलंकृता	मल्लार	झप		73-74	
311	113	उरगाभरण श्रीललित तनुशोभा	कौशिकवसन्त	जति	अमोघवज्र	74	
312	114	जिनवरतनय त्रिभुवनश्रीका	रामकली	,,		74-75	
313	115	मधुरिपु त्रिपुरा दुइ निक राया	मंगलवसन्त	षट्कंकाल	पवनवज्र	75	
314	116	शत शत हाथे तारामण्डल	वैराटी	माथ		76	
315	117	नमामि नमामि जिनधातुकरंडक	भैरवी	त्रिभुजा		76-77	
316	118	नमामि 2 जिनधर्मधातु स्वयंभू	नाट	जति	वाग्वज्र	77	आचार्य बन्धुदत्त ने गाया है
317	119	सकल जगत संसाररूपोऽहं	,,	,,		77-78	
318	120	कमलविकासित स्थितिभास्वर	निर्वेद	माथ	परमादिवज्र	78	
319	121	श्रीमंजुनाथवर महावीर विजया	कर्णाटी	झप		78-79	
320	122	मायाजालबिम्ब सरिस शरीरा	मलार	माथ	अवधू चन्द्रपा	79	
321	123	पवन मंडल पंबीजकं रे	भैरवी	भप	रत्नवज्र	79-80	
322	124	त्रिदल कमल वर्ण कुसुमसंगे	भास	माथ		80	
323	125	अष्टचत्वारिंशत् पद्मदल माझ	तोडी	,,	ॐकारवज्र	81	
324	126	लम्बोदर लम्बकर्ण त्रीणि लोचना	असावरी	,,		81	
325	127	नमामि 2 श्रीहारिती महायक्षिणी	भैरवी	त्रिभुजा		82	
326	128	मृगेन्द्र धातो(तू)परि संस्थितं तं	कामोड	षट्कंकाल		82-83	संस्कृत में है।
327	129	पवन शिखि जल भूसरूपा	मालती	माथ			
328	130	नमामि 2 श्रीमंजुवज्रा	भैरवी	—			
329	131	हुंबीजसंजात सुवर्णाभा	हिंडोल	षट्कंकाल		87	

क्रमांक	ग्रन्थांक	चर्यापद प्रतीक	राग	ताल	कर्ता	पत्र सं०	विशेष
330	132	इन्द्र जमान्तक नीलसदन	,,	झप		87-88	
331	133	विश्वकमल मध्य हुंकारसंभव	मलार	माथ	रत्नवज्र	89-90	
332	134	पूर्वदिशांचल चण्डोग्रश्मशान	कामोड	झप		91-92	
333	135	अद्भुत हाथ चौरासी	,,	,,		92-93	
334	136	कोलायि रे स्थिया वाला	तोडी	—			

•

चर्याप्रतीकानुक्रमणी

•

प्रस्तुत चर्याओं के प्रणेता आचार्यों की नामानुक्रमणी

[टि०—यहाँ नाम उन्हीं आचार्यों के दिये गये हैं, जिनका 'गावइ सुरतवज्र', 'भनइ कर्णपा' आदि रूप से चर्याओं में स्पष्ट उल्लेख है।]

प्रस्तुत संग्रहों में प्रयुक्त रागानुक्रमणी

पदमंजरी (पटमंजरी, पद्मांजलि ?)	16,167,176,214,220,276,304
भास	125,140,150
भैरव	179,180,190,192
भैरवी	7,9,11, 15,20, 38,41.42, 54,55, 62,67, 72,77,81,84,89,106,118,124,128,130, 132,134,137, 138, 145,146, 153,158, 177,178, 205. 207,209, 213,218,225, 226.240, 241,253, 254, 260,262,265, 270,274, 277,281, 288,303, 315,321, 325,328,330
मङ्गलवसन्त	313
मधुमती	14,52,70,164,182, 199,212, 251,268, 286
मरुत	87
मलार (मल्लार)	53.71,101,113,133, 142.159,163,252, 269,298,310,320,331
मातंगिनी	196
मालती	47,48,57,219, 228.234, 246,247,256, 272
मालव	4,35 46,74.100,148 245,297
मालिनी	80
रामकली	86,102,115,143,183,186,283,299,312
ललित	17,40, 73,136, 139.152, 161,215,239, 250,271,278
ललितगुर्जरी	43
वसन्त	34.78 83.85 99,116,233,275,280,282, 296
वसन्तललित	169,200
विभास	2,3,28, 68 88, 97,105, 193, 194, 202, 227,237,266,285.294,302
वैराटी	61,117,127,189,259,314
शृङ्गारमालती	21,25,94,110,131,198,223,291,307
हिंडोल	13,211,329

प्रस्तुत चर्याओं में प्रयुक्त तालानुक्रमणी

ताल	चर्या क्रमांक
एकताल	3,4,5,9, 37,41,54, 55,62, 64,173,196, 197,207,236,240,253,254,260,262
जति (जटि)	19,23,43,49,56,58,59,69,91,102,114, 115, 119,141, 144,147, 154,156,192, 217,221, 242,248, 255,257 267, 284, 299,308,311,312,316,317
झप	6,7,8,11,15,17,18,22,29, 30,36,40,45, 50 51,61,65-67,72,73,77,78,85,88,93, 96,97,99-101,104, 106,108, 113,122, 124 132,136, 138-140, 142,145, 146, 149, 151-153, 158,160, 161 166,170, 171, 177,205, 206,213, 215,216,220, 228,229, 235,238, 239,244, 249,250, 259,263-265, 270,274, 275, 282,285, 290,293,294, 296-298, 301, 303,305, 310 319,321,330,332,333
त्रिताल	84
त्रिभुजा	20,31 89, 118,128, 134,218,230,281, 288,315,325
दूर्जमान	14,34, 52,87, 164, 168,169, 172,178, 182 188,195,199,212,232,251,268
भुक्तमाथ	194
माथ (माठ)	1,13 16,21, 25-28,35,38, 39,44,46-48, 53 57,60,68,71,74-76,79-81,83,86,90, 94,95,98, 103,105, 107,110, 117,123, 125-127,131, 133, 135,143, 148, 150, 155,157, 159,162, 163,165, 167,174-176, 180,181, 183-186, 189,193,198, 200,202,211, 214,219, 223-227, 234, 237,243, 245-247,252, 256, 258,266, 269, 271-273, 276-278,280, 283,286, 287,291,292, 295,300, 302, 304,307, 314,318,320,322-324,327,331

वसुमती	63
षट्कंकार (षट्कंकाल)	10,12,24,33,82,112,116,129,136,187, 190,208,210, 222,231, 232,279, 306, 309,313,326,329,

चर्यापुस्तक में अतिरिक्त रूप से लिखे गये रागों के लक्षण

सरोवरस्था भुवि कल्पमण्डपे सरोरुहे(है:) शङ्करमर्चयन्ती।
तालप्रयोगात् प्रतिबद्धगीता गौरी(डी) भवेदध्वरवीरदा मे॥

(च० पु० पत्र 1)

वियोगिनि(नी) विदिसि(वेदिवि)कीर्णपुष्पा
आश्वास्यमाना प्रियया च सं(स)ख्या।
विष्टं सरोकं (?) मृदुकान्तिदेहा
रागप्रधाना पद्म(दमं)जरीयम्॥

(च० पु०, पत्र 2)

प्रफुल्लसप्तच्छदमाल्यधारी युवा च गौरोऽलसरो(लो)चनश्री:।
विनीय श्रीवासगृहं प्रभाते विलासवेशो ललित: प्रदिष्ट:॥

(च० पु०, पत्र 5)

तुरङ्गमस्कन्धनिबद्धदेह: स्वर्णप्रभा(भ:) शोणितस्विन्नगात्र:।
संग्रामभूमौ विचरं(रन्) धृतास्त्रो रागोऽयमुक्त: किल चण्डवेग:॥

(च० पु०, पत्र 6)

जताद(यत्नाद्) दधान: कृतभूतिभूषणं काषायवासा: स्थिरदेहस्त्यि:(यष्टि:)।
सयोगपट्टोद्धृतनेत्रमुद्रा(द्रो) गान्धारराग: कथितस्तपस्वी॥

(च० पु०, पत्र 7)

विरो(नो)दयन्ती प्रियमेव गौरी सु(शु)कं कराच्चामल(र)चारणेन।
कर्णे दधाना सुरवृक्षपुष्पं वराङ्गनेयं कथिता व(वै)राटी॥

(च० पु०, पत्र 24)

लुप्त बौद्ध-वचन संग्रह

—व्रजवल्लभ द्विवेदी—

[इस शीर्षक के अन्तर्गत 'धी:' के प्रथम अंक में छः ग्रन्थों से तथा द्वितीय अंक में पाँच ग्रन्थों से संकलित ग्रन्थों और ग्रन्थकारों के वचनों का संग्रह आवश्यक टिप्पणियों के साथ किया गया था। प्रस्तुत अंक में सुभाषितसंग्रह, महामायातन्त्र-टीका (गुणवती), क्रियासमुच्चय, वज्रावली और गुह्यसमयसाधन में उद्धृत ग्रन्थों और ग्रन्थकारों के वचनों को संकलित किया गया है।]

अध्यात्मसाधन

(1)

[1]स्थूलं शब्दमयं प्राहुः सूक्ष्मं चिन्तामयं तथा।
चिन्तया रहितं यत्तद् योगिनां परमं पदम्॥

अविकल्पप्रवेशाधारणी

(1)

[2]अविकल्पाशयो भूत्वा सद्धर्मेऽस्मिन् जिनात्मजः।
विकल्पदुर्गं व्यतीत्य क्रमान्निष्कल्पमाप्नुते॥
प्रशान्तमचलं श्रेष्ठं वशवर्ति समासमम्।
निर्विकल्पसुखं तस्माद् बोधिसत्त्वोऽधिगच्छति॥

(2)

[3]केन कारणेन कुलपुत्र! अविकल्पधातुरमनसिकार इत्युच्यते? सर्वविकल्पनिमित्तसमतिक्रान्ततामुपादायेति।

1. सुभाषितसंग्रह, पृ० 93; चर्यागीतिकोशव्याख्या (पृ० 60) में यह आगमवचन के नाम से उद्धृत है। "कम्बलाम्बरपादैरप्युक्तमध्यात्मसाधने" इस अवतरणिका वाक्य से प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ कम्बलाम्बरपाद की रचना है। स्वल्प पाठभेद के साथ यह श्लोक शैव ग्रन्थ सार्धत्रिशतिकालोत्तरागम (1.8) में भी मिलता है। निःश्वास के साथ कालोत्तरागम गुह्यसिद्धि (8.12) में स्मृत है।
2. महामायातन्त्रटीका (गुणवती), पत्र 5B; टीकाकार ने यहाँ इन दो श्लोकों को उद्धृत कर उनकी व्याख्या भी की है।
3. अद्वयवज्रसंग्रह, पृ० 61; यह ग्रन्थ वहाँ पृ० 60 पर भी इस तरह से उद्धृत है—"अविकल्पप्रवेशाधारण्यां बोधिसत्त्वो महासत्त्वः सर्वविकल्पनिमित्तानि आकाशगतिकानि अमनसिकारव परिवर्जयति"।

इन्द्रभूतिपाद

(1)

[1]यावद्वज्रमणेभि(?) वज्रदहनोत्त्रस्यद्विधुर्वायुना
तिष्ठत्यब्जपुटेषु कोटरकुटीलीनेन्दुरस्मिन् क्षणे ।
यद्भूतं स्वपरादिकल्परहितं व्यापारहीनं मनो
जानीयात् सहजं तदेव हि पुनर्युक्त्यागमेन स्फुटम् ॥

कम्बलाम्बरपाद

(2)

[2]परमार्थविकल्पेऽपि[१] नावलोयेत पण्डितः ।
को हि भेदो विकल्पस्य शुभे वाऽप्यशुभेऽपि वा ॥
नाधारभेदाद् भेदोऽस्ति [२]वह्निदाहकतां प्रति ।
स्पृश्यमानो दहत्येव [३]चन्दनैर्ज्वलितोऽप्यसौ ॥

(3)

[3]न [च] धर्मो धर्मप्राप्त्यै भवत्यपरिभावितः ।
किमु पीतं छिनत्यम्बु दृष्टं श्रवणदर्शनैः ॥
वर्णणात्र किमुक्तेन भाव्यते यदि केनचित् ।
विषाणमपि दृश्येत शशाश्वयोः शिरोरुहे ॥
मण्डूकोऽपि जटाभारभासुरोत्तम्भधूसरः ।
शुक्लयज्ञोपवीतश्च स्कन्धारोपितकम्बलः ॥

(हेवज्रोद्भव)कुरुकुल्लाकल्प

(1)

[4]विल्वमस्तमशिखिनं च न कुर्यादीदृशं गुरुम् ।
.................................मुद्रासिद्धिविनाशिनम् ॥

---

1. क्रियासमुच्चय, पृ० 357-358
2. सुभाषितसंग्रह, पृ० 17; दोहाकोशटीका (पृ० 95) में ये दोनों श्लोक बिना नाम के उद्धृत हैं ।
   १. ल्पेन-सु. । २. वह्नेर्दाह-सु. । ३. चन्दनज्व-सु. ।
3. सुभाषितसंग्रह, पृ० 40-41
4. क्रियासमुच्चय, पृ० 7

कृष्णपाद

(1)

[1]स्पर्शस्यादौ विचित्रः कमलकुलिशयोर्योगतोऽसौ विपाकः
पश्चान्मन्थोत्थरागानलदलितजगत्सङ्गराशिर्विमर्दः ।
तस्मिन् निध्यायमाने पवनसहचरे रागवह्नौ सरोजे
सोऽयं संबोधिमार्गः सकलजिनतनुर्योगिगम्यो विलक्षणः ॥

घण्टापाद

(1)

[2]विण्मूत्रादिसशि(संसि)क्तरजोयुक्ताङ्गनापटम् ।
कुट्टितमोत्तविष्ठाक्तं गुग्गुलेन विमिश्रितम् ॥
प्रेतानलं समादाय कृत्वा तं पद्मभाजने ।
प्रक्षिप्य तत्र तत्सर्वमालीढपदसंस्थितः ॥
क्रोधाविष्टस्तु चक्रात्मा तस्मै चक्रत्रयात्मने ।
दद्याद् वज्री ततो धूपमाविष्टः स्यान्न संशयः ॥

डाकिनीजालसंवर

(1)

[3]अशेषनिःशेषत्रैधातुकस्थितानां देवदैत्यमनुष्याणां प्राणिषु यावन्तो देहिषु····।

(2)

[4]स्वाधिष्ठानाद् भवत्येव सर्वबुद्धसमागमः ।····
बोधिचित्ते सदा रक्तं दुःखनिर्वृतिहेतुकम् ।
अन्यथा नहि बुद्धत्वं कल्पासंख्येयकोटिभिः ॥
तात्त्विकादूर्ध्वमालोके अन्ये च वर्णाः स्थिताः ।
आवरणप्रहाणाद्धि योगिनस्तेऽतिदुर्लभाः ॥

---

1. क्रियासमुच्चय, पृ० 357
2. वज्रावली, पृ० 193
3. गुह्यसमयसाधनसंग्रह, पृ० 262
4. ,, पृ० 263

डाकिनीवज्रपञ्जर

(7)

[1]धन्योऽहं केकरः श्रीमान् धृष्टतैव हि साधुता ।
धृष्टता चेन्न बुद्धत्वं तुल्यजल्पं दृशाकुलम् ॥

अथाह वज्रदूषकः—

वज्रसत्त्वो महाद्विष्टो मूढो वैरोचनो मुनिः ।
कामासक्तश्च लोकेशः पैशुन्यो वज्रभास्करः ॥
सर्वदोषाकरामोघो रोषिणः पञ्चनायकाः ।
सत्त्वा अण्डजा वा जरायुजा वा संस्वेदजातकास्तथा ॥
रूपिणो वाऽरूपिणो वा औपपादुकाश्च ये ।
सत्त्वान् बुद्धान् करिष्यामीत्येवमुक्तं त्वया पुरा ॥
भूतोऽसि त्वं परं बुद्धस्ते कथं न कृता जिनाः ।
अत एव मृषावादीत्युच्यसे न कथं विभो ॥
सत्त्वान् प्रतार्य बुद्धत्वं यत् त्वदीयं तदद्भुतम् ।
शृणु केकर भो मारोपद्रवदुर्भिक्षपरचक्रप्रपीडने ॥
प्रतिष्ठामण्डले होमेऽनावृष्टौ च शान्तिके ।
यो मां नर्तयते नित्यं मन्त्रभावनयान्वितः ॥
तस्याहमग्रतः स्थानात् तत्र मिथ्या भवामि भो ।
इत्याह भगवान् बुद्धो डाकिनीवज्रपञ्जरे ॥

(8)

[2]प्रथमं ब्रह्मसूत्रेण द्वितीयं कोणसूत्रतः ।
तृतीयेन चतुःपार्श्वं चतुःसूत्रं प्रपातयेत् ॥

(9)

[3]दिनेनैकेन सिद्धिः स्याद् दिनद्वयविधानतः ।
दिनत्रयप्रयोगेण दिनचत्वारितस्तथा ॥

---

1. क्रियासमुच्चय, पृ० 44-45
2. क्रियासमुच्चय, पृ० 92; वज्रावली, पृ० 57
3. सुभाषितसंग्रहः, पृ० 50-51

दिनपञ्चप्रयोगेण सिद्ध्यते नात्र संशयः ।
पूजां पुष्पादितः कृत्वा ध्यानालयं प्रधूप्य च ॥
प्रविश्य मुद्रया सार्धं वज्रयोग समारभेत् ।
अस्तंगते तु चन्द्रार्के इदं योगं समारभेत् ।
अरुणोद्गतवेलायां सिद्ध्यते नात्र संशयः ॥
महारागानुरागेण महारागस्वभावतः ।
महारागसमाधिस्थो महामुद्रां प्रसाधयेत् ॥

तत्त्वसंग्रह

(2)

[1]वज्रस्तम्भाग्रसंस्थेषु पञ्चमण्डलमण्डितम् ।

(3)

[2]जलाभिषेकस्यादर्शज्ञानात्मकत्वमप्युक्तं तत्त्वसंग्रहे । अक्षोभ्योऽप्यादर्शज्ञानस्वभाव इति च ।

दारिकपाद

(1)

[3]प्रसरति मणिमूले चित्तमानन्दमात्रं
पुनरपि मणिमध्ये शेषसंकल्पलोलम् ।
तदुपरि शिखरान्तश्रान्तमभ्रान्तरूपं
किमपि सहजजातं पद्मसंस्थं तनोति ॥

[4]नाग(बुद्धि)पाद

(1)

[5]बीजन्यासोऽथ चिह्नं वा देवतारूपमेव वा ।
निषिक्तं घटितं स्थाप्यं मण्डले च यथाबलम् ॥

---

1. वज्रावली, पृ० 82
2. ,, पृ० 224
3. क्रियासमुच्चय, पृ० 357
4. क्षेमराज ने शिवसूत्रविमर्शिनी तथा वरदराज ने शिवसूत्रवार्त्तिक के प्रारम्भ में बौद्ध सिद्ध नागबोधि का जिस तरह से उल्लेख किया है, उससे ऐसा लगता है कि नागबोधि वसुगुप्त से पहले हुए थे । क्रियासमुच्चय तथा वज्रावली में नागबुद्धिपाद नाम मिलता है, नागबोधि नहीं । अभिनवगुप्त ने तन्त्रालोक (29.36) में छः ओवल्लियों का उल्लेख किया है । तदनुसार नागबोधि नाम ही सही लगता है । पद्धतिकार नागबुद्धि नागबोधि से भिन्न है या अभिन्न ? इसकी परीक्षा अपेक्षित है ।
5. क्रियासमुच्चय, पृ० 119-120; वज्रावली, 105

(2)

[1]सौवर्णं राजतं वाथ ताम्रं मृण्मयमेव वा ।
यथालब्धं च संगृह्य स्थापयेत् कलशं व्रती ॥

(3)

[2]वस्त्रोपरि न्यसेत् सूत्रं सुशुक्लं विधिकोविदः ।

(4)

[3]सर्वेषां माण्डलेयानां बीजं चिह्नमथापि वा ।
घटपार्श्वे लिखेद् धीमान्................................... ॥

(5)

[4]तोरणत्रिगुणद्वाराक्ते स्तम्भोपरि स्थितम् ।
पक्षिणीक्रमशीर्षाभ्यां युक्तं घण्टानिनादितम् ॥

(6)

[5]तोरणं वज्रशिखरं तद्बाह्यं चक्रवाटकम् ।
वज्रमालासुरश्म्याढ्यम् ॥

(7)

[6]मूलसूत्रस्य चार्धेन गर्भचक्रप्रमाणतः ।
ब्रह्मणो वेदिमात्रं स्याद् वेदिकार्धद्वितीयकः ॥
तृतीया सार्ववेद्या च वेदिकार्द्धेन चापरम् ।
वज्रमालोज्ज्वलं कुर्यात् पञ्चरश्मिविभूषितम् ॥
बाह्यतो गर्भचक्रस्य चतुःसूत्रं समालिखेत् ।
अष्टस्तम्भं लिखेद् गर्भवज्राङ्कितसुशोभनम् ।
नव कोष्ठानि तत्रैव वज्रस्तम्भान्तरान्तरे ॥

---

1. वज्रावली, पृ० 40
2. ,, पृ० 41
3. ,, पृ० 42
4. आचार्यनागबुद्धिपादलिखितागमवचनमिति वज्रावल्याम्, पृ० 63
5. वज्रावली, पृ० 66
6. ,, पृ० 76

परमाद्यमहायोगतन्त्र

(1)

[1]दुष्करैर्नियमैश्चीर्णैर्मूर्तिः शोचति दुःखिता ।
दुःखाद्धिः क्षिपते चित्तं विक्षेपात् सिद्धिरन्यथा ॥

(2)

[2]वज्रं तत्त्वेन संग्राह्य घण्टां धर्मेण वाद्य च ।
समयेन महामुद्रामधिष्ठाय हृदा जपेत् ॥

(3)

[3]षडङ्गं भावयेद् योगी स्वाधिष्ठानमहर्निशम् ।
द्रुतं सिद्धिमवाप्नोति उक्तं वज्रभृता स्वयम् ॥

परमार्थसेवा

(2)

[4]सस्राद्(?)दशाधिक्यगुणः सुभिक्षुर्भिक्षोर्दशाधिक्यगुणः सुमन्त्री ।
श्रीब्रह्मचर्येण समाधिना च मैत्र्यादिना तत्त्वसुनिश्चयेन ॥

(3)

[5]न श्रीगुरू रक्तपटावृताङ्गो न श्रीगुरुः शिक्खिरिपात्रहस्तः ।
न श्रीगुरुर्दुःखदपांशुकूली न श्रीगुरुः पादपमूलवासी ॥

बुद्धकपालयोगिनीतन्त्र

(2)

[6]प्रज्ञाकमलोदरमध्ये कोटियोजनं मण्डलं त्रिपुटम् ।
तस्मिन् मण्डलमध्ये सुशिष्यं सेचयेद् बुधः ॥

(3)

[7]चतुरस्रं चतुर्द्वारं पताकाष्टविभूषितम् ।

---

1. क्रियासमुच्चय, पृ० 5
2. ,, पृ० 348; वज्रावली, पृ० 206
3. गुह्यसमयसाधनसंग्रह, पृ० 260
4. क्रियासमुच्चय, पृ० 4
5. ,, पृ० 5
6. ,, पृ० 416; वज्रावली, पृ० 239
7. वज्रावली, पृ० 151

(4)

[1]शान्तिके चतुरस्रं कुण्डमधोर्ध्वं च वितस्तिकम् ।
पौष्टिकं वर्तुलं कुण्डमधोर्ध्वेन वितस्तित्रयम् ॥
वश्ये त्रिकोणकुण्डमधोर्ध्वेनाङ्गुलाष्टकम् ।
अभिचारेऽर्धचन्द्राकारं कुण्डमधोर्ध्वेन हस्तप्रमाणम् ॥

महामायोत्तरतन्त्र

(1)

[2]....षण्मासतोऽवश्यं मूकीभावप्रसङ्गतः ।
दीप्यतेऽसौ महायोगी योगिनीभिरुपासितः ॥

मूलतन्त्र

(2)

[3]प्रज्ञोपायविधानेन पूजयेद् योगवित् सदा ।

योगिनीसंचारतन्त्र

(1)

[4]प्रथमं समाहितो योगी शक्तिमुत्पाद्य यत्नतः ।
पश्चादुत्पन्नसामर्थ्यो व्रतचर्यां मनेप्सिताम् ॥
पञ्चवर्णसमाचार एकवर्णं तु कल्पितम् ।
निर्विकल्पैकचित्तात्मा भुञ्जीत कामपञ्चकम् ॥
एवं श्रीहेरुकज्ञानी सर्वसिद्धिप्रपूरकः ।
करोति स महाप्राज्ञोऽद्वयज्ञानसुव्रतम् ॥
चर्याव्रतप्रवृत्तस्य ज्ञेयो योगः सुनिश्चितः ।

लक्ष्याभिधानतन्त्र

(1)

[5]ॐ तिष्ठ महाक्रोधावेशाय हूँ श्रीहेरुकाय विद्महे विद्याराजाय धीमहे स्वाहेत्यनेन वीरं प्रचोदयेत् ।

---

1. वज्रावली पृ० 234
2. सुभाषितसंग्रह, पृ० 86
3. गुह्यसमयसाधनसंग्रह, पृ० 257
4. क्रियासमुच्चय, पृ० 374-375; वज्रावली, पृ० 227-228
5. वज्रावली, पृ० 193-194

वज्रक्रोधसमापत्तिगुह्यतन्त्र

(1)

[1]दशोत्तरशतप्रकारं कुण्डं निर्दिष्टं कर्मभेदेन। तद्यथा—शान्तिके परिमण्डलम्, पौष्टिके चतुरस्रम्, अभिचारे त्रिकोणम्, आकर्षणेऽङ्कुशाकारम्, वशीकरणे वज्राकारम्, धन्य(न)धान्याकर्षणे रत्नाकारम्, कामरूपित्वे लिङ्गाकारम्, अन्तर्धाने धनुःशराकारम्, आज्ञाधरे खड्गाकारम्, पापप्रणाशने वृत्तं सतोरणाकारम्, विद्यारागणे कुलमुद्राकारम्, आकाशगमने व्योममण्डलाकारम्, विद्योत्तेजने सज्वालाकारम्, महामण्डलसाधने चक्राकारम्, सर्वधर्मेषु चतुरस्रं चतुर्द्वारं बाह्यमण्डलं सूत्रयित्वा पूर्वतो वज्रखचितं दक्षिणे रत्नखचितं पश्चिमे पद्मखचितमुत्तरे कर्मवज्रखचितमित्यादिकम्।

वज्रडाकतन्त्र

(3)

[2]रजोभूमिद्विगुणं मानं प्रभामण्डलकं बहिः।
तच्चक्रवाटबाह्ये तु वृक्षाद्यष्टश्मशानकम्॥

(4)

[3]सोपायं सर्वकर्माणि निर्विकल्पश्चरेत् सदा।
निर्विकल्पेन भावेन व्रतानामुत्तमोत्तमम्॥

वज्रपञ्जर(तन्त्र)

(1)

[4]षडङ्गं भावयेदिति।

(2)

[5]गुरोश्छायां न लङ्घयेद् गुरुपत्नीं च पादुकाम्।
सततं ये लङ्घयन्ति ते नराः क्षुरधारिणः॥
सुसिद्धोऽपि महाशिष्यो गुरोराज्ञां न लङ्घयेत्।
इह लोके भवेत् कष्टं परलोके नरकं वसेत्॥

1. वज्रावली, पृ० 232
2. क्रियासमुच्चय, पृ० 96; वज्रावली, पृ० 70
3. ,, पृ० 374; ,, पृ० 226-227
4. गुह्यसमयसाधनसंग्रह, पृ० 262
5. ,, पृ० 267

मायायाश्च प्रयोगेण मिथ्याभक्तिप्रकाशनात् ।
क्षयी कुष्ठी महारोगी जायते नरकादिषु ॥
एवं मत्वा सदा शिष्यो गुरुभक्तिपरायणः ।
साधयेद् विपुलां सिद्धिं गुरोराज्ञाप्रयत्नतः ॥

वज्रमाला

(1)

[1]क्रमशीर्षस्तु पक्षिणी ।

वज्रामृत(तन्त्र)

(1)

[2]तिष्ठते निश्चलं विद्या अमृतं ध्यानमारभेत् ।
ध्यायते परमं तत्त्वममृतं बिन्दुरूपिणम् ॥
खमध्ये शशिसङ्काशं शून्यतत्त्वमुदाहृतम् ।
अक्षयमव्ययं सूक्ष्मं वज्रसत्त्वमनाहतम् ॥
नाभिमध्ये स्थितो देवः कर्णिकागूढगोचरे ।
स्रवते शुक्ररूपेण भगलिङ्गान्तरे स्थितः ॥

विरुवा(रूपाक्ष)पाद

(2)

[3]यावन्नो पतति प्रभास्वरमयः शीतांशुधाराद्रवो
देवीपद्मदलोदरे समरसीभूतो जिनानां गणैः ।
स्फूर्जद्वज्रशिखाग्रतः करुणयाभिन्नं जगद्धारणं
तावच्छ्रीकरुणाबलस्य सहजं जानीहि रूपं विभोः ॥

वैरोचनाभिसम्बोधितन्त्र

(1)

[4]उपायरहितं ज्ञानं शिक्षा वापि हि देशिता ।
श्रावकाणां महावीर अवताराय तेषु वै ॥

---

1. वज्रावली, पृ० 60
2. महामायातन्त्रटीका (गुणवती), पत्र 6b
3. क्रियासमुच्चय, पृ० 357; चर्यागीतिकोशव्याख्या (पृ० 11) में स्वल्प पाठभेद के साथ यह श्लोक सेकोद्देश के वचन के रूप में उद्धृत है । क्या हम कह सकते हैं कि विरूपाक्षपाद ने इस ग्रन्थ की रचना की ?
4. क्रियासमुच्चय, पृ० 5

सम्पुटतन्त्र

(7)

[1]मूलसूत्रस्य चार्धेन गर्भचक्रप्रमाणतः ।
ब्रह्मणो वेदिमात्रं स्याद् वेदिकार्धद्वितीयकम् ॥
तृतीयं सार्ववेद्या च वेदिकार्धेन चापरम् ।
वज्रमालोज्ज्वलं कुर्यात् पञ्चरश्मिविभूषितम् ॥
बाह्यतो गर्भचक्रस्य चतुःसूत्रं समालिखेत् ।
अष्टस्तम्भं लिखेद् गर्भवज्राङ्कितसुशोभनम् ।
नवकोष्ठानि तत्रैव वज्रस्तम्भान्तरे……… ।

(8)

[2]तच्चाभिषेकं चतुर्विधम्—

प्रथमं कलशाभिषेकं द्वितीयं गुह्याभिषेकतः ।
प्रज्ञाज्ञानं तृतीयं तु चतुर्थं तत्तथा पुनः ॥

सम्पुटोद्भवतन्त्र(राज)

(2)

[3]सप्तत्रिंशात्मके वज्रे ब्रह्मणः सव्यवामयोः ।
सार्धमात्रात् परं त्यक्त्वा द्विसूत्रमध्यमात्रिकम् ॥
हित्वा त्रिमात्रिकं वृत्तं वज्रावल्यर्धमात्रिका ।
रश्मिमालार्धमात्रा स्यान्मात्रात्रयान्तरे पुनः ॥
अर्धमात्रान्तरे वृत्तं तन्मध्ये पद्ममालिका ।
पुनस्त्रिमात्रिकं वृत्तमर्धमात्रान्तरे पुनः ॥
तन्मध्ये चन्द्रमाला च राजभूमिस्त्रिमात्रिका ।

सर्वतथागतप्रतिष्ठामहायोगतन्त्र

(1)

[4]अष्टाङ्गुलादिकेशं च वस्त्राभरणमण्डितम् ।
कृत्वा वज्रधरः कार्यो भिक्षौ वज्रधरे सति ॥
अन्येषां नियमो नास्ति……………………………… ।

---

1. वज्रावली, पृ० 76
2. ,, पृ० 230
3. क्रियासमुच्चय, पृ० 99-100
4. क्रियासमुच्चय, पृ० 6-7

संवरार्णव(तन्त्र)

(1)

[1]आचार्यस्त्रिविधस्तन्त्रे यथोक्तं संवरार्णवे ।
गृहस्थः श्रामणेराख्यो भिक्षुश्चेति त्रिधा भवेत् ॥
उत्तमो भिक्षुराचार्यो यस्मादुक्तं तथागतैः ।
मध्यमः श्रामणेराख्यो गृहस्थस्त्वधमो मतः ॥
सेकं पञ्चविधं प्राप्तो गृहस्थस्त्वधमो मतः ।
प्राप्तदशाभिषेको हि श्रामणेरस्तु मध्यमः ॥
अग्राभिषेकलब्धो हि भिक्षुरुत्तमो वज्रधक् ।
पञ्चशिक्षापदप्राप्तो दशशिक्षापदैर्युतः ।
कोटिशिक्षापदप्राप्तो न ते तुल्यास्त्रयः स्मृताः ॥

कोटिशिक्षेति पर्यन्तावस्थाशिक्षणाद् युगनद्धसमाधेरभ्यासात् ।

उत्तमे विद्यमाने तु नाराध्या अन्यमन्त्रिणः ।
सत्सु त्रिष्वेकदेशेषु गृहस्थः पूज्यते यदा ।
तदा बुद्धश्च धर्मश्च संघो गच्छत्यगौरवम् ॥

संवरोदय(तन्त्रम्)

(1)

[2]आशु प्रयत्नात् प्रतिपूजनीया मद्यैश्च मांसैश्च हि वज्रदेव्यः ।
ताः पूजिता भक्तिमतो जनस्य श्रीवज्रयानाभिरतिं गतस्य ॥
संतुष्टचित्ता वरदा भवन्ति तासां करस्थानि यतो वराणि ।

सार्धत्रिशतिका

(1)

[3]विरूपान् निर्गुणांश्चापि हीनामप्यधिवासयेत् ।
चतुर्णामप्यनुज्ञातः पर्षदां मण्डले विधिः ॥
शिक्षासु स्वासु युक्तानां महायानरतात्मनाम् ।

---

1. क्रियासमुच्चय, पृ० 3
2. क्रियासमुच्चय, पृ० 414-415
3. क्रियासमुच्चय, पृ० 323; वज्रावली, पृ० 177

(2)

[1]चक्रं संलिख्य सम्यक् प्राक् प्रतिष्ठायां त्वयं विधिः ।
प्रतिमापुस्तकादीनां पौरुषान्तस्तु सेकतः ॥
जलमौली तु निष्यन्दः पाको वज्राधिपाह्वया ।
पौरुषोऽत्र जिनैः सेको वैमन्त्यं गुह्ययोगतः ॥

1. वज्रावली, पृ० 164

बौद्ध पारिभाषिक शब्दों का अभिप्राय

—व्रजवल्लभ द्विवेदी—

[इस योजना के स्वरूप पर 'धीः' के प्रथम अंक में प्रकाश डाला जा चुका है। प्रथम दो अंकों में प्रधानतः सेकोद्देशटीका तथा अद्वयवज्रसंग्रह से विशिष्ट पारिभाषिक शब्दों की व्याख्याएँ संगृहीत की गई थी। यहाँ साधनमाला, तत्त्वज्ञानसंसिद्धिटीका, दोहाकोशव्याख्या और चर्याकोशव्याख्या में उपलब्ध सामग्री एकत्रित की गई है।]

अकरणसंवर

(पापदेशनानन्तरं) पुनरकरणसंवरं प्रतिगृह्य। (सा० मा०, पृ० 55)

पापदेशनामकरणसंवरम्। (सा० मा०, पृ० 106)

पापदेशना-अकरणसंवर····। (सा० मा०, 138, 173, 193)

प्रतिदेश्य पुनरकरणसंवरं प्रतिगृह्य। (सा० मा०, पृ० 201)

अध्येषणा

सत्त्वार्थमा संसारं कुर्वन्तु भगवन्तः संबुद्धास्तत्सुता अपि महाबोधिसत्त्वास्तिष्ठन्तु मामापरिनिर्वाणादिति। (सा० मा०, पृ० 56)

जगदर्थमासंसारं कुर्वन्तो भगवन्तस्तथागतास्तत्सुता अपि तिष्ठन्तु मां परिनिर्वान्तु इति।

(सा० मा०, पृ० 202)

अभावः

अभाव उच्छेदग्रहः। (त० सं० टी०, पृ० 3)

अभिज्ञापञ्चकम्

पञ्चाभिज्ञाः—दिव्यं श्रोत्रम्, दिव्यं चक्षुः, परचित्तज्ञानम्, पूर्वनिवासानुस्मृतिः, ऋद्धिविज्ञानं च। (त० सं० टी०, पृ० 27)

अमनसिकारः

न मनसि क्रियत इत्यमनसिकारः, निर्विकल्पकं सहजज्ञानम्। (दो० को० व्या०, पृ० 62)

अयाचितविधिः

स्वयंग्रहः स्वसंकेतैरन्यैराख्यानमेव वा।
यत्र नास्ति तमेवाहुरयाचितविधिं बुधाः॥ (सा० मा०, पृ० 334)

अवधूती

अवहेलया अनाभोगेन क्लेशादिपापान् धुनोतीत्यवधूती। अवधूत्यवकृतं मूलं प्रधाननालं येन सा, अवधूतीकृतो मूलनालहेतुरिति शब्दाक्षरम्। (दो० को० व्या०, पृ० 150)

अवधूती मध्यदेशे ग्राह्यग्राहकवर्जिता ॥ इति।

ग्राह्यं ज्ञेयम्, ग्राहको ज्ञानम्, ताभ्यां वर्जिता। (दो० को० व्या०, पृ० 151)

आत्मनिर्यातनम्

सन्त्रस्तान् दुःखितान् दृष्ट्वा प्रयच्छेदात्मविग्रहम्। (सा० मा०, पृ० 169)

आत्मरक्षा

पुष्पैकं गृहीत्वा ॐ मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष मां हुँ फट् स्वाहा इति स्वशिरोदेशे पुष्पं क्षिपन्नात्मरक्षां कुर्यात्। पुनः ॐ आः हुँ इत्यात्मरक्षादिमन्त्रः। (सा० मा०, पृ० 102)

आनन्दचतुष्टयम्

[1]आनन्दास्तत्र जायन्ते क्षणभेदेन भेदिताः।
क्षणज्ञानात् सुखज्ञानमेवंकारे प्रतिष्ठितम् ॥····
विचित्रे प्रथमानन्दः परमानन्दो विपाकजे।
विरमानन्दो विमर्दे च सहजानन्दो विलक्षणे ॥ (दो० को० व्या०, पृ० 68)

आलिः

आलिना लोकज्ञानेन। (च० को० व्या०, पृ० 24)

आवेशः

एवं स्यादावेश उत्कलिका प्रकम्पनं बाष्पः।
पातो ज्ञानोत्पादः सारूप्यं चापि परिपाट्या ॥

तत्र त्रिविध आवेशः—कायावेशः, वागावेशः, चित्तावेशश्च। तत्र कायावेशे उत्कलिका रोमाञ्चो भवति प्रकम्पनं गात्राणां स्यात्, हर्षाश्रुपातः, भुवि पतित्वा याति। चित्तावेशे ज्ञानोत्पादः स्वरूपप्रतिभानं स्वयमेव स्यात्। वागावेशेऽपूर्वप्रवचनं सारूप्यं सदृशं सर्वज्ञज्ञान-प्रतिपादनम्। (त० सं० टी०, पृ० 22-23)

आसनम्

आसनं धर्मोदया। (त० सं० टी०, पृ० 5)

उपेक्षा

केयमुपेक्षा ? प्रतिघानुनयनिबन्धनमपहाय हिताहितेषु सत्त्वेषु परमहिताचरणम्।

(सा० मा०, पृ० 57)।

---

1. हेवज्रतन्त्र और उसकी टीका देखिये।

अन्ततोऽसद्व्यासङ्गनिवृत्तिरूपसहितां ध्यायादुपेक्षां बुधः ॥ (सा० मा०, पृ० 97)

निजकार्यमनालोच्योपेक्षामन्यार्थकारिताम् । (सा० मा०, पृ० 100)

कोपेक्षा ? सर्वत्र प्रतिघानुनयरहितपरहितधर्मतायां स्वरसवाहिनी प्रवृत्तिः ।(सा०मा०, पृ०115)

बीजाक्षरमेव मञ्जुघोषरूपेणात्मानं निष्पादयितुमवधाय **अष्टलोकधर्मेषु** उपेक्षणमुपेक्षा ।

(सा० मा०, पृ० 138)

उपेक्षाम् असद्व्यासङ्गपरिहानिस्वभावाम् । (सा० मा०, पृ० 173)

कोपेक्षा ? प्रतिघानुनयनिबन्धनमपहाय हिताहितेषु जन्तुषु परमहिताचरणमुपेक्षा, यद्वा सर्वस्मिन् प्रेमानुशयरहितपरहितधर्मतायां स्वरसवाहिनी प्रवृत्तिरुपेक्षा, अथवा लाभालाभयशोऽपयशोनिन्दास्तुतिसुखदुःखेत्या**द्यष्टलोकधर्म**प्रमुखसकलाप्रस्तुतव्यापारोपेक्षणमुपेक्षा ।

(सा० मा०, पृ० 203)

क्लेशप्रतिपक्षमार्गोपसंहाराकारामुपेक्षां भावयेत् । (सा० मा०, पृ० 225)

मित्रोदासीनशत्रुषु अनुनयप्रतिघविरहाकारा संस्कारसमतया सत्त्वमात्रमेतदित्याकृतिरुपेक्षा ।

(सा० मा०, पृ० 315)

परदोषोपेक्षामुपेक्षां भावयेत् । (सा० मा०, पृ० 385)

उष्णीषकमलम्

महासुखं वसत्यस्मिन्निति महासुखवास उष्णीषकमलम् । तत्र सर्वशून्यालयो डाकिनीजालात्मकजालधराभिधानं मेरुगिरिशिखरमित्यर्थः । (दो० को० व्या०, पृ० 151)

एवम्

शून्यताकरुणाभिन्नरूपिणी महामुद्रेत्थमेवंकारं येन प्रतीयते, तेन योगीन्द्रेण स्कन्धधात्वायतनादीनि प्रतीतानीति । सैव महामुद्रा धर्मकरण्डकरूपा धर्मकायात् । अतस्तेषां करण्डकण्ठानां सैव रसं बोधनं निजप्रभोर्वज्रधरस्य वेश आभरणमलङ्कारः, शोभनमिति यावत् । तथा च हेवज्रे—

[1]एकाराकृति यद्दिव्यं मध्ये वं-कारभूषितम् ।
आलयः सर्वसौख्यानां बुद्धरत्नकरण्डकम् ॥

अन्यत्राप्युक्तम्—

एकारस्तु भवेन्माता वकारस्तु रसाधिपः ।
बिन्दु चानाहतं ज्ञानं तज्जातान्यक्षराणि च ॥ (दो० को० व्या०, पृ० 68)

---

1. हेवज्रतन्त्र और उसकी टीका देखिये ।

करुणा

करुणेति संवृतिबोधिचित्तम्, गुरुसम्प्रदायात् । (च० को० व्या०, पृ० 103)

करुणा तु कीदृशी ? अगाधापारसंसारसागरमध्ये पतितानन्तसत्त्वधातून् समुद्धरामीत्यध्याशयः । (सा० मा०, पृ० 57)

दुःखादुःखनिदानतोऽपि जगतामभ्युद्दिधीर्षां दयाम् । (सा० मा०, पृ० 97)

दुःखहेतोर्दुःखाच्च कृपामुद्धर्तुकामनाम् । (सा० मा०, पृ० 100)

का करुणा ? या त्रिदुःखदुःखितानां सत्त्वानां संसारसागरादुद्धरणकामना ।(सा० मा०, पृ० 115)

तत्र दुःखाद् दुःखहेतोः समुद्धरणलक्षणा करुणा । (सा० मा०, पृ० 138)

करुणां दुःखाद् दुःखहेतोः समुद्धरणकामनाम् । (सा० मा०, पृ० 172)

करुणा पुनः कीदृशी ? दुःखाद् दुःखहेतोः समुद्धरणकामना, त्रिदुःखदुःखमहानलप्रज्वलितसंसारलोहभवनप्रविष्टान् जन्तून् ततोऽपि समुद्धरामीत्यध्याशयो वा करुणा, अथवा त्रिदुःखदुःखितानां सत्त्वानां संसाराम्बुधेः समुद्धरणेच्छा । (सा० मा०, पृ० 203)

सर्वदुःखापनयाकारां मैत्रीम् (करुणाम्) । (सा० मा०, पृ० 225)

परदुःखापनयनसमीहा करुणा । (सा० मा०, पृ० 315)

परदुःखनाशक्रियां करुणाम् । (सा० मा०, पृ० 385)

कापालिकः

कं सुखं पालितुं समर्थ इति कापालिकः । (च० को० व्या०, पृ० 36)

कं संवृतिबोधिचित्तं पालयतीति कापालिकः । (च० को० व्या०, पृ० 63)

कायतरुः

रूपादयः पञ्च स्कन्धाः षड् इन्द्रियाणि धातवो विषयाश्च ग्राह्यग्राहकग्रहणोपलक्षितपल्लवत्वात् कायस्तरुवरत्वेन गृहीताः । (च० को० व्या०, पृ० 2)

कालिः

कालिना लोकाभासेन । (च० को० व्या०, पृ० 24)

कुलम्

कुमार्गचन्द्रादिकं यस्यामवधूत्यां लयं गच्छति, सा प्रकृतिपरिशुद्धाऽवधूतिका कुलशब्देन बोद्धव्या । (च० को० व्या० पृ० 126)

क्षणचतुष्टयम्

[1]विचित्रं च विपाकं च विमर्दं च विलक्षणम् ।
चतुःक्षणं समागम्य एवं जानन्ति योगिनः ॥

1. हेवज्रतन्त्र और उसकी टीका देखिये ।

विचित्रं विविधं ख्यातमालिङ्गनचुम्बनादिकम् ।
विपाकं तद्विपर्यासं सुखं ज्ञानस्य भुञ्जनम् ॥
विमर्दमारोचनं प्रोक्तं सुखं भुङ्क्ते मयेति च ।
विलक्षणं त्रिभ्योऽन्यद्रागारागविवर्जितम् ॥ (दो० को० व्या०, पृ० 68)

गुणाष्टकम्

अणिमा, लघिमा, गरिमा, ईषित्वम्, वशित्वम्, कर्तृत्वम्, भोज्यत्वम्, इच्छाप्रकामता—इति गुणाष्टकम् । (त० सं० टी०, पृ० 27)

चतुर्ब्रह्मविहारभावना

(सप्तविधां पूजामेकादशविधां वा कृत्वा) मैत्रीकरुणादिचतुर्ब्रह्मविहारभावनां कुर्यात् ।
(सा० मा०, पृ० 43)

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षेति चतुर्ब्रह्मविहारं भावयेत् । (सा० मा०, पृ० 115)

ततो निर्मलीभूतचित्तसन्ताने करुणामैत्रीमुदितोपेक्षा भावयेत् । (सा० मा०, पृ० 138)

तदनन्तरं चतुर्ब्रह्मविहारं मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षासंज्ञकं वक्ष्यमाणक्रमेण भावयेत् ।
(सा० मा०, पृ० 202)

चतुर्ब्रह्मविहारान् भावयेत् । (सा० मा०, पृ० 385)

आदौ सत्त्वेषु मैत्रीं हिततनयगतस्नेहरूपां विचिन्त्य
म्लानैकापत्यबोधात् तदनु करुणया भावयन् सर्वसत्त्वान् ।
पश्यंस्तत्सौख्यसम्पद्भरमतिमुदितः सत्पराथैंकमूर्ति
ध्यायात् तत्सर्वसत्त्वेष्वहितहितमतिम्लानशून्यामुपेक्षाम् ॥
(सा० मा०, पृ० 389)

तद्दुःखोद्धरणा करुणा, सुखप्रतिष्ठापना मैत्री, स्थिरसुखत्वेन मुदिता, तथतारूपत्वोपेक्षा ।
(सा० मा०, पृ० 405)

महाबोधिचित्तमुत्पाद्य सर्वसत्त्वेषु दिव्यसुखोपसंहाराकारां मैत्रीं सर्वदुःखापहाराकारां करुणां तत्सुखाविच्छेदनियमाकारां मुदितां क्लेशोपक्लेशग्राह्यग्राहकाद्यमनसिकारलक्षणामुपेक्षां च भावयेत् । ततो धर्मपुद्गलादिविकल्पकलङ्कवर्जितरूपां शरन्निर्मलमध्याह्ननभोनिभामद्वयज्ञानैकरूपां शून्यतां विभाव्य ॐ शून्यताज्ञानवज्रस्वभावात्मकोऽहमित्यधितिष्ठेत् ।
(सा० मा०, पृ० 474)

पञ्चोपचारपूजां पापदेशनां च यावदुपेक्षाम् । (सा० मा०, पृ० 576)

चन्द्रम्

चन्द्रं प्रज्ञाज्ञानम् । (च० को० व्या०, पृ० 49)

चित्तम्

चित्तसंज्ञा द्विविधा—लौकिकी लोकोत्तरा च। यल्लौकिकं तद्विकल्पलक्षणं निराकरणीयम्। यल्लोकोत्तरं निर्मलं धर्मकायलक्षणं सहजस्वरूपं वा। (दो० को० व्या० पृ० 92)

रूपशब्दगन्धरसस्पर्शादिग्राह्यग्राहककल्पनैरनालिप्तं चाचिन्त्यप्रत्ययोदयं सम्यक्संबोधिपदं चित्तं सर्वज्ञतापदम्। (सा० मा०, पृ० 320)

चेल्लः

चेल्लो दशशिक्षापदी। (दो० को० व्या०, पृ० 84)

च्युतिः

कलुषं बोधिचित्तं च्युतिरभिधीयते। अत एव विरागोत्पत्तिः, "च्युतेर्विरागसंभूतिर्विरागाद् दुःखसंभवः" इति प्रवचनात्। तदेव दुःखम्, यत्संसारावाहकं कर्म तच्च्युतेरेव संभवति। तथा च—"न विरागात् परं पापं न पुण्यं सुखतः परम्" इति। (त० सं० टी०, पृ० 2-3)

ज्ञानमुद्रा

केचित्तस्याभासमात्रा सुमनसि जनितादर्शबिम्बोपमा वै
योगीन्द्रैः सेवनीयाः परमजिनसुतैः सेविता या च बुद्धैः।
सा ज्ञानार्चिः प्रवृद्धा दहति सविषयं मारवृन्दं समस्तं
रागादिं चापि काये दहति समसुखं योगिनां वर्षयोगात्॥

(दो० को० व्या०, पृ० 163)

डोम्बी

डोम्बीति परिशुद्धावधूती नैरात्म्या बोद्धव्या। (च० को० व्या०, पृ० 35)

डोम्बीति शुक्रनाडिकाऽपरिशुद्धावधूतिका। (च० को० व्या०, पृ० 65)

डोम्बी प्रकृतिप्रभास्वरपरिशुद्धावधूतिका ज्ञानमुद्रा। (च० को० व्या०, पृ०)

तत्त्वम्

गुणदोषैः रहित एव परमार्थः। स्वसंवेदनेन केनापि नार्थः प्रयोजनम्। नहि गुणास्तत्रारोपितव्याः, दोषास्तस्मादपनेतव्याः। तथा चोक्तम्—

नापनेयमतः किञ्चित् प्रक्षेप्तव्यं न किञ्चन।
द्रष्टव्यं भूततो भूतं भूतदर्शी विमुच्यते॥ इति।....

तत्त्वं न कुतश्चिदायाति, न कुत्रचिद् याति। न कस्मिन्नपि स्थाने तिष्ठति। तथा चोक्तमष्टसाहस्रिकायाम्—"नहि कुलपुत्र! तथता आगच्छति न गच्छति वा अचलिता तथता एवमेव कुलपुत्र! तथागतस्यागमनं वा गमनं वा न प्रजायते" इत्यादि। एवंभूतमपि तत्त्वं गुरूपदेशेन हृदये संयाति। तत्त्वस्य वर्णरहिततोक्ता परमार्थस्तोत्रे—

न रक्तो हरितो माञ्जिष्ठो वर्णस्तेनोपलभ्यते ।
न पीतः कृष्णः शुक्लो वा अवर्णाय नमोऽस्तु ते ॥ इति ।

आकृत्या च भुजमुखादिना विहीनः । उक्तं च—

न महान्नापि ह्रस्वोऽपि न दीर्घः परिमण्डलः ।
अप्रमाणगतिं प्राप्याप्रमाणाय नमोऽस्तु ते ॥ इति ।

तथापि स सर्वैराकारैः सम्पूर्णः—"सर्वाकारवरोपेता शून्यता तथता मता" इति वचनात् ।
(दो० को० व्या०, पृ० 69-70)

इति तावन्मृषा सर्वं यावद् यावद् विकल्प्यते ।
तत्सत्यं तत् तथाभूतं तत्त्वं यन्न विकल्प्यते ॥ इति ।

किं तद्भवतीति पुनरप्याह—

रूपमस्य मतं स्वच्छं निराकारं निरञ्जनम् ।
शक्यं च नहि तज्ज्ञातुमबुद्धेषु कथञ्चन ॥
बुद्धोऽपि न तथा वेत्ति यथाऽयमितरो जनः ।
प्रतीत्य तां तु तस्यैव तां जानाति स एव हि ॥ इति ।
(दो० को० व्या०, पृ० 91)

बुद्धेरगोचरतया न गिरां प्रचारो दूरे गुरुप्रथितवस्तुकथावतारः ।
तत्तु क्रमेण करुणादिगुणावदाते श्रद्धावतां हृदि पदं [1]स्वयमादधाति ॥
(दो० को० व्या०, पृ० 94)

परमार्थविकल्पेऽपि नावलीयेत पण्डितः ।
को हि भेदो विकल्पस्य शुभे वाप्यशुभेऽपि वा ॥
नाधारभेदाद् भेदोऽस्ति वह्निदाहकतां प्रति ।
स्पृश्यमानो दहत्येव चन्दनैर्ज्वलितोऽप्यसौ ॥ (दो० को० व्या०, पृ० 95)

तारा

तारा तर्जनी । (सा० मा०, पृ० 69)

तालः

तालोऽङ्गुष्ठः । (सा० मा०, पृ० 69)

त्रिशरणगमनम् (रत्नत्रयशरणगमनम्)

बुद्धं शरणं गच्छामि द्विपदानामग्र्यम्, धर्मं शरणं गच्छामि विरागाणामग्र्यम्, संघं शरणं गच्छामि गणानामग्र्यमिति रत्नत्रयशरणगमनम् । (सा० मा०, पृ० 55-56)

1, तुलना कीजिये —"नायमात्मा प्रवचनन लभ्यः····वृणुते तमं स्वाम्" (मुण्डकोवनिषद्) ।

समस्तकालत्रयवर्तिबुद्धाननन्तदिग्व्यापिकृपागुणौघान् ।
प्रहीणदोषार्यगणान् सधर्मानवेत्य भक्त्या शरणं प्रयामि ॥ (सा० मा०, पृ० 116-117)

बुद्धं शरणं गच्छामि यावदाबोधिमण्डतः ।
धर्मं शरणं गच्छामि यावदाबोधिमण्डतः ।
सघं शरणं गच्छामि यावदाबोधिमण्डतः ।
(सा० मा०, पृ० 201-202)

एषोऽहमाबोधेर्बुद्धं शरणं गच्छामि द्विपदानामग्र्यम्, धर्मं शरणं गच्छामि समग्रं महायानम्, संघं शरणं गच्छामि अवैवर्तिकबोधिसत्त्वगणम् । (सा० मा०, पृ० 225)

धर्मः

स्वलक्षणधारणाद् धर्मः घटपटस्तम्भकुम्भादिभूतविकारः । तस्य स्वरूपेण नास्ति रूपमिति श्रीहेरुकतन्त्रतत्त्वपटले । (च० को० व्या०, पृ० 17)

धर्माक्षरम्

अनाहताक्षरमेव धर्माक्षरम् ।....परमविरमौ रागविरागौ कालविकालरूपौ द्वावुपेक्षध्वम् । तत्र धर्माक्षरमुक्तलक्षणं षोडशीकलारूपं मध्ये लक्षयेदिति । (दो० को० व्या०, पृ० 160-161)

धर्मोदयः

धर्मोदयः सन्ध्याभाषया प्रज्ञाधर्मोदयः ।....पुनरपि सदर्थवेदनेन सम्यग् यथाभूतभावस्य धर्मस्य उदयस्थानं यद्भवति स एव धर्मोदयः । (च० को० व्या०, पृ० 84)

धर्मोदया

आकाशमहाभूतस्वभावं धर्मोदयाख्यं महावज्रधरस्वभावं शरच्छशधरधवलमधःसूक्ष्मं उपरि विशालं त्रिकोणमन्तर्गगनस्वरूपम् । (सा० मा०, पृ० 226)

धारा

धाराऽनामिका । (सा० मा०, पृ० 69)

नादः

प्रज्ञाग्राहकज्ञानविकल्पो नादः । (च० को० व्या०, पृ० 146)
नादो रश्मिरेखा । (सा० मा०, पृ० 153)

निरञ्जनः

निर्गतानि अञ्जनानि रागद्वेषादिक्लेशा अस्मिन्निति निरञ्जनः सहजकायः ।
(दो० को० व्या०, पृ० 149)

निर्वाणम्

निश्चलं सर्वसंकल्पवायुभिरचलत्वात्, निर्विकल्पं मुद्रारहितत्वेन, निर्विकारमिन्द्रियातीतत्वात्, उदयान्तगमनरहितत्वेन शरदमलमध्याह्नसंनिभं खसमाकारमेतन्निर्वाणं भण्यते।

(दो० को० व्या०, पृ० 159)

निर्वाणं महामुद्रापदम्। (दो० को० व्या०, पृ० 160)

नैरात्म्ययोगिनी

त्रिनाड्यां चार्पयित्वा निराभासीकृत्य सैव परिशुद्धाऽवधूतिका नैरात्म्ययोगिनी।

(च० को० व्या०, पृ० 14)

पञ्चमण्डलम्

जानुद्वयकरद्वयशिरोभिः कृतनमस्कारमित्यर्थः। (त० सं० टी०, पृ० 24)

पापदेशना

यत्किञ्चिदस्यां जातावन्यासु वा जातिष्वनादिनिधने जातिसंसारे संसरता मया पापकं कर्म कायेन वाचा मनसापि कृतं कारितं क्रियमाणमनुमोदितं तत्सर्वं भगवतां त्रैलोक्यमहोत्सवानां गुरुबुद्धबोधिसत्त्वानां पुरतः प्रतिदेशयामीति। (सा० मा०, पृ० 55)

द्वेषाच्च रागादथ मोहतोऽपि कायेन वाचा मनसाऽन्यतोऽपि।
पापं कृतं कारितमेव यत्तत् सर्वं जिनानां पुरतो दिशामि॥ (सा० मा०, पृ० 116)
मन्त्री शुभाभिवृद्ध्यर्थं कुर्यात् पापस्य देशनाम्। (सा० मा०, पृ० 169)

यत्किञ्चिदनादिसंसारे संसरता मया पापकं कर्म कायेन वाचा मनसाऽपि कृतं कारितं क्रियमाणमनुमोदितं वा तत्सर्वं प्रतिदेशयामि। (सा० मा०, पृ० 201)

सर्वमात्मनः पापं प्रतिदेशयामि। (सा० मा०, पृ० 225)

यत्कृतं मया पापकं कर्म कारितमनुमोदितं तदद्य भगवत्याः प्रत्यक्षतो देशितं सर्वमिति।

(सा० मा०, पृ० 373)

पुण्यपरिणामना

सप्तविधानुत्तरपूजया यदेव कुशलमुत्पन्नं तदेव संबोधये परिणामयामीति। (सा० मा०, पृ० 56)

सप्तविधानुत्तरपूजापापदेशनाकुशलमूलमुपजातं तत्सर्वं सम्यक्संबोधये परिणामयामीति।

(सा० मा०, पृ० 202)

सर्वं चात्मनः कुशलमनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ परिणामयामि। (सा० मा०, पृ० 225)

पुण्यानुमोदना

संबुद्धप्रत्येकश्रावणबुद्धानां तत्सुतानामपि बोधिसत्त्वानां सत्त्वानामपि त्रैलोक्योदरवर्तिनां यदेव कुशलं तत्सर्वमनुमोदयामीति। (सा० मा०, पृ० 55)

पुण्यं च यत् सर्वतथागतानामन्यच्च संबोधिसमाश्रितानाम् ।
प्रत्येकबुद्धस्य च सद्गुरूणां सर्वं जिनानां स्वनुमोदयामि ॥

(सा० मा०, पृ० 116)

ततोऽनुमोद्य सम्बुद्धबोधिसत्त्वगणस्य च ।
शैक्षाशैक्षादिसत्त्वानां कृत्स्नं पुण्यं स्वभावतः ॥ (सा० मा०, पृ० 169)

सुगतप्रत्येकश्रावकजिनानां तत्सुतानामपि बोधिसत्त्वानां सदेवकसब्रह्मकलोकानां यत् कुशलं तत् सर्वमनुमोदयामीति । (सा० मा०, पृ० 201)

सर्वबुद्धबोधिसत्त्वार्यपृथग्जनानां सर्वकुशलमनुमोदे । (सा० मा०, पृ० 225)

पूजा

तद्रश्मेरेव निर्गतपुष्पधूपदीपगन्धचूर्णचीवरच्छत्रध्वजघण्टापताकादिभिस्तेषां च बाह्याध्यात्मपूजादिभिः संपूजनं पूजा । (सा० मा०, पृ० 116)

दशदिक्षु स्थिता बुद्धा बोधिसत्त्वाश्च नायकाः ।
तेभ्यो नानाविधां पूजां कृत्वा पुष्पादिभिर्धिया ॥ (सा० मा०, पृ० 169)

तदनु तेषामाकाशदेशावस्थितानां महाकारुणिकानां बुद्धबोधिसत्त्वानां दिव्यपुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजघण्टापताकादिभिर्महती पूजा । (सा० मा०, पृ० 201);

स्वहृदि आदिस्वरसंभूतचन्द्रमण्डलस्थमष्टमं बीजं तस्योद्भवपञ्चोपचारपूजान्वितो नानाविधदेवीः पूजाभ्रजालविसरैः पूजयेदिति पूजा । (सा० मा०, पृ० 373)

प्रज्ञा

प्रज्ञा पङ्कजम् । (त० सं० टी०, पृ० 9)

प्रणामश्लोकः

लोकधातुष्वनन्तेषु यावन्तः ससुता जिनाः ।
कायेन मनसा वाचा तान् सर्वान् प्रणमाम्यहम् ॥ (सा० मा०, पृ० 2)

बिन्दुः

दीर्घहूंकारमुपायग्राहकज्ञानविकल्पं बिन्दुरिति । (च० को० व्या०, पृ० 146)

बोधिचित्तम्

बोधिचित्तं सांवृतस्पन्दरूपं शुक्रम् । (दो० को० व्या०, पृ० 150)

[1]शून्यताकरुणाभिन्नं बोधिचित्तमिति स्मृतम् । (सा० मा०, पृ० 111)

1. यह गुह्यसमाज का वचन है ।

बोधिचित्तोत्पादः

उत्पादयामि सम्बोधौ चित्तं बोधाय देहिनाम् ।
भद्रचर्यां चरिष्यामि सर्वसत्त्वहितोदयाम् ॥ (सा० मा०, पृ० 3)
इत्थं मयोपार्जितपुण्यवृन्दादुत्पादयाम्येष सुबोधिचित्तम् । (सा० मा०, पृ० 117)

अहो बताहमनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धेयं सर्वं सर्वसत्त्वानामर्थाय हिताय सुखाय यावदत्यन्तनिष्ठे निर्वाणधातौ बुद्धबोधौ प्रतिष्ठापनाय च। (सा० मा०, पृ० 225)

भवसागरे पतितान् सत्त्वान् तेषामुद्धरणं कर्तुं चित्तवज्रं श्रेष्ठं करोम्यहमिति बोधिचित्तोत्पादः । (सा० मा०, पृ० 373)

बोधिसत्त्वः

अस्योत्पादादुत्पादितं बोधिचित्तं बोधिसत्त्व इत्युच्यते । (सा० मा०, पृ० 111)

भयाष्टकम्

सिंहहस्तिवह्निसर्पचौरनिगडजलेभ्यो भयम् । (त० सं० टी०, पृ० 26)

भवः

संवृतिबोधिचित्तो हि भवः । (च० को० व्या०, पृ० 70)

भावः

भावः शाश्वतग्रहः । (त० सं० टी०, पृ० 3)

भावाः

अण्डजा जरायुजा उपपादुका संस्वेदजा देवासुरादिप्रकृतिकाः सर्वे भावाः स्वभावेन परिशुद्धा योगीन्द्रस्य । (च० को० व्या०, पृ० 32)

भिक्षुः

भिक्षुः कोटिशिक्षापदी । (दो० को० व्या०, पृ० 84)

मण्डलम्

तथा च गुटिकातन्त्रे—

सर्वाङ्गभावनातीतं कल्पनाकल्पवर्जितम् ।
मात्राबिन्दुसमायुक्तमेतन्मण्डलमुत्तमम् ॥ (दो० को० व्या०, पृ० 158)

मध्या

मध्या शिखी । (सा० मा०, पृ० 69)

मार्गाश्रयणम्

मार्गः संबुद्धोक्तः । स चाश्रयणीयो मया नान्य इति । (सा० मा०, पृ० 56)

संश्रित्य जैनं परिशुद्धमार्गं ब्रह्मेन्द्ररुद्रप्रभृतिष्वनर्घम् । (सा० मा०, पृ० 117)

मार्गस्तथागतोक्तः । स चाश्रयणीयो मया नान्य इति । (सा० मा०, पृ० 202)

एषोऽहमनुत्तरसम्यक्संबोधिमार्गमाश्रयामि यदुत वज्रयानम् । (सा० मा०, पृ० 225)

मुदिता

मुदिता पुनः कीदृशी ? धातुत्रयावस्थितानां सत्त्वानां यानि सुचरितानि तेषु तद्भोगैश्वर्यादिषु हृष्टचित्तता । (सा० मा०, पृ० 57)

चित्तप्रीतिविशेषलक्षणवतीं संमोदिकाम् । (सा० मा०, पृ० 97)

नित्यं सद्गुणसंयोजनेच्छां प्रमुदितां तथा । (सा० मा०, पृ० 100)

का मुदिता ? उत्पादितकुशलमूलपरयोगैश्वर्यादिषु हृष्टचित्तता । (सा० मा०, पृ० 115)

व्यवसायसंसिद्ध्युपायदर्शनात् प्रहर्षणं मुदिता । (सा० मा०, पृ० 138)

मुदितां प्रमोदरूपाम् । (सा० मा०, पृ० 172-173)

मुदिता तु ईदृशी—प्रमोदो मुदिता, अथवाऽसदृशे बुद्धत्वे तदुपाये च सर्व एव संसारिणः सत्त्वा मया प्रतिष्ठापयितव्या इत्यध्याशयो मुदिता, यद्वा विश्वेषां यानि कुशलानि तेषु तद्भोगैश्वर्यादिषु च आकृष्टचित्तता । (सा० मा०, पृ० 203)

दिव्यसुखावियोगनियमाकारां मुदिताम् । (सा० मा०, पृ० 325)

मोदन्तां सत्त्वा इत्याकारा मुदिता । (सा० मा०, पृ० 315)

परसुखतुष्टि मुदिताम् । (सा० मा०, पृ० 385)

मेरुगिरिः

वरः श्रेष्ठो गिरिः कङ्कालरूपो मेरुगिरिः । तथा च सम्पुटे—

स्थितः पादतले वायुर्भैरवो धनुराकृतिः ।
स्थितोऽस्ति कटिदेशे तु त्रिकोणोद्धरणस्तथा ॥
वर्तुलाकाररूपो वरुणस्त्रिदले स्थितः ।
हृदये पृथिवी चैव चतुरस्रा समन्ततः ॥
कङ्कालदण्डरूपो हि सुमेरुर्गिरिराट् तथा । (दो० को० व्या०, पृ० 156)

मैत्री

तत्रेयं मैत्री सर्वसत्त्वेषु अतिशयितहितैकपुत्रस्नेहलक्षणा । (सा० मा०, पृ० 57)

सत्त्वेष्वेकतनुजतोषसमतासंलक्षितां मित्रताम् । (सा० मा, पृ० 97)

मैत्रीं सत्पुत्रसम्प्रीतिसहस्रगुणितां जने । (सा० मा०, पृ० 100)

का मैत्री ? या सर्वसत्त्वेष्वेकपुत्रप्रेमता । (सा० मा०, पृ० 115)

जगदेकपुत्रप्रेमलक्षणा मैत्री । (सा० मा०, पृ० 138)

मैत्रीं सर्वसत्त्वेष्वेकपुत्रप्रेमतालक्षणाम् । (सा० मा०, पृ० 172)

तत्र केयं मैत्री ? सर्वसत्त्वेष्वेकपुत्रप्रेमतालक्षणा, अथवा हितसुखोपसंहाराकारेति ।
(सा० मा०, पृ० 202, 203)

सर्वसत्त्वेषु सुखोपसंहाराकारां मैत्रीम् । (सा० मा०, पृ० 225)

परसौख्यसम्पदिच्छा मैत्री । (सा० मा०, पृ० 315)

परहितचिन्तां मैत्रीम् । (सा० मा०, पृ० 385)

याचना

निरुत्तरधर्मदेशनां भगवन्तस्तथागता देशयन्तु, यया त्वरितमेव सत्त्वाः संसारागाधसागरं तरन्तीति । (सा० मा०, पृ० 56)

तादृशीं निरुत्तरां धर्मदेशनां भगवन्तस्तथागता देशयन्तु, यया झटित्येव संसारिणः सत्त्वा भवबन्धनान्निर्मुक्ता भवन्तीति । (सा० मा०, पृ० 202)

युगनद्धः

एकः स्वाभाविकः कायः शून्यताकरुणाद्वयः ।
नपुंसकमिति ख्यातो युगनद्ध इति क्वचित् ॥ (सा० मा०, पृ० 505)

रत्नम्

रतिमनन्तसुखं तनोतीति रत्नं चतुर्थानन्दं बोद्धव्यम् । (च० को० व्या०, पृ० 133)

रसना

दक्षिणनासापुटे उपायसूर्यस्वभावेन रसना स्थिता । तथा च हेवज्रे—रसनोपायसंस्थिता ।
(दो० को० व्या०, पृ० 151)

ललना

वामनासापुटे प्रज्ञाचन्द्रस्वभावेन ललना स्थिता । तथा च हेवज्रे—ललना प्रज्ञास्वभावेन ।
(दो० को० व्या०, पृ० 151)

वज्रम्

परमाद्यं वज्रम् । परममुत्कृष्टत्वात्, आद्यं सुखस्यादिकारणभूतत्वात्, तदेव पात्रम्, सुखस्याधारभूतत्वाद् विद्यापङ्कजमेवाभिधीयते । अवधूतीगतं यदा बोधिचित्तं भवेत् तदा वज्रमभिधीयते । (त० सं० टी०, पृ० 7)

वज्रधरः

वज्रं द्रव्यं धारयतीति वज्रधरो मदनसहितनृकपालः·····वज्रमद्वयज्ञानं धारयतीति वज्रधरः ।
(त० सं० टी०, पृ० 9)

वज्रधरहृदयम्

वज्रम् अभेद्यज्ञानम्, तद् धारयतीति वज्रधरः सम्यक्संबुद्धः, तस्य हृदयमप्रकाश्यत्वाद् धर्मोदयाऽभिधीयते । (त० सं० टी०, पृ० 6)

वज्रयोगिनी

वज्रम् अनुपलम्भज्ञानम्, तेन सह योगोऽस्या अस्तीति । (त० सं० टी०, पृ० 4)

वन्दना

स्वहृद्बीजरश्मिभिरेव निर्गतसमस्ताकाशदेशव्यापिगुरुबुद्धबोधिसत्त्वान् स्फुरणसंहरणाकारेण जगदर्थक्रियाकरणैकपरान् दृष्ट्वा स्वहृद्बीजकिरणैरेव दिव्यगन्धपुष्पप्रकरादिकं निश्चार्य मण्डलपूर्वकं कृताञ्जलिना गुरुबुद्धबोधिसत्त्वचरणकमलविन्यस्तमूर्ध्ना प्रणामना वन्दना ।

(सा० मा०, पृ० 115-116)

पूजयित्वा परमकारुणिको योगी भक्तिनम्रः कायवाक्चित्तेन वन्दयेदिति वन्दना ।

(सा० मा०, पृ० 373)

वामहस्तः

हस्तो धारणकर्मा, तत्साधर्म्याद् हस्तो वामः, वामनासिकापुटस्थितः (श्वासः) ।

(त० सं० टी०, पृ० 11)

वाराही

वरं बोधिचित्तम् आहिनोतीति वाराही । हि गतौ । आङ्पूर्वकात् संज्ञायामण्, पृषोदरादित्वादात्वम् । महासुखस्थितं भगवन्तमन्वेतीत्यर्थः । (त० सं० टी०, पृ० 2)

वीरचर्याव्रतम्

वीरचर्याव्रतमेव यौवराजव्रतचर्येति वज्रकापालिकचर्याव्रतमिति चोक्तं श्रीसम्पुटतन्त्रे ।

(वज्रावली, पृ० 219)

वीराः

प्रज्ञारविन्दैर्यैर्योगीन्द्रैर्निरञ्जनरूपेणावगतम्, तेऽस्मिन् भवमण्डले विषयारिविमर्दनाद् वीराः ।

(च० को० व्या०, पृ० 70)

शून्यचतुष्टयम्

शून्य-अतिशून्य-महाशून्य-सर्वशून्यमिति चतुःशून्यस्वरूपेण पत्रचतुष्टयम् ।

(दो० को० व्या०, पृ० 151)

शून्य तत्त्वम्

अहमपि शून्यम्, विकल्पगोचरत्वात् । जगदपि शून्यं विकल्पमात्रमेव । त्रिभुवनमपि शून्यम् । निर्मले मलरहिते सहजे महासुखम् । न पापं न पुण्यं संभवति । तथा चोक्तम्—

अनाविलमहाज्ञाने ज्योतीरूपप्रभास्वरे ।
पापपुण्यकथा कुत्र विकल्पागोचरे शुभे ॥ (दो० को० व्या०, पृ० 71)

षड् दर्शनानि

षड् दर्शनान्युच्यन्ते—ब्रह्म-ईश्वर-अर्हन्त-बौद्ध-लोकायत-सांख्याश्च । (दो० को० व्या०, पृ० 72)

षष्ठजिनः

षष्ठो जिनो वज्रसत्त्वो द्रव्यमभिधीयते, ततस्तदुत्पत्तेः, कारणे कार्योपचारात् ।····षष्ठो वज्रसत्त्वः । तदुत्पत्तिहेतुत्वाद् बोधिचित्तमेव वज्रसत्त्वोऽभिधीयते, कारणे कार्योपचारात् । तेनोपलक्षणभूतेन । न तु प्रज्ञाकमलोदरगतं बोधिचित्तं विधेयम्, तदा महासुखसंभवात् । तथा चादिबुद्धे—

पतिते बोधिचित्ते तु सर्वसिद्धिनिधानके ।
मूर्च्छिते स्कन्धविज्ञाने कुतः सिद्धिरनिन्दिता ॥

(त० सं० टी०, पृ० 6)

समतायोगः

एकस्वभावस्तु महासुखभाव एव योगीश्वरस्य समतायोगः । (च० को० व्या०, पृ० 158)

समयः

समयो मन्त्रतन्त्रमुद्रादिः । (वज्रावली, पृ० 180)

सर्वधर्मप्रकृतिपरिशुद्धता

चतुःप्रमाणभावनानन्तरं सर्वधर्मप्रकृतिपरिशुद्धतां चिन्तयेत्—सर्व एवामी धर्माः प्रकृत्या स्वरूपेण परिशुद्धाः, अहमपि प्रकृतिपरिशुद्ध इत्यादिकमामुखयेत् । इमामेव सर्वधर्मप्रकृतिपरिशुद्धतां ॐ स्वभावशुद्धाः सर्वधर्माः स्वभावशुद्धोऽहमित्यनेन दृढीकुर्यात् ।

(सा० मा०, पृ० 57-58)

चतुर्ब्रह्मविहारभावनानन्तरं सर्वधर्मप्रकृतिपरिशुद्धतां भावयेत् । सर्व एव धर्माः प्रकृत्या स्वभावेन परिशुद्धाः, अहमपि प्रकृतिपरिशुद्ध इत्यादिकमामुखीकुर्यात् । इमां च सर्वधर्मप्रकृतिपरिशुद्धतामनेन मन्त्रेणाधितिष्ठेत्—ॐ स्वभावशुद्धाः सर्वधर्माः स्वभावशुद्धोऽहमिति ।

(सा० मा०, पृ० 203)

सर्वधर्मशून्यता

सर्वधर्मप्रकृतिपरिशुद्धतामामुखीकृत्य सर्वधर्मशून्यतां ध्यायात् । तत्रेयं शून्यता—मनोमात्रमेवेदं तेन तेनाकारेण प्रकाशात्मकं प्रतिभासते । यथा स्वप्ने नास्ति मनसो बाह्यं मनोग्राह्यम् । ग्राह्याभावाद् ग्राहकमपि मनो नास्ति । ततश्च मनःस्वरूपाः सर्वधर्माः । तेषां ग्राह्यग्राहकादिसकलकल्पनाप्रपञ्चशून्यता तत्त्वम्, परमार्थ इति यावत् । अयमर्थः—अद्वैतप्रकाशमात्रात्मकं सचराचरं जगदिति चिन्तनीयम् । इमामेव शून्यतां ॐ शून्यताज्ञानवज्रस्वभावात्मकोऽहमित्यमुना मन्त्रेणाधितिष्ठेत् । (सा० मा०, पृ० 58)

सर्वधर्मप्रकृतिपरिशुद्धतां विभाव्य सर्वधर्मशून्यतां विभावयेत्। तत्रेयं शून्यता—ग्राह्यग्राहकादिसकलकल्पनाप्रपञ्चवञ्चितचित्राद्वैतप्रकाशमात्रात्मकं सचराचरं विश्वमिति चिन्तयेत्। इमामेव शून्यतामनेनापि मन्त्रेणाधितिष्ठेत्—ॐ शून्यताज्ञानवज्रस्वभावात्मकोऽहमिति।

(सा० मा०, पृ० 204)

ततः सर्वधर्मान् मनसाऽवलम्ब्य विचारयेत्। चित्तमेवैतत् तेन तेनाकारेण भ्रान्तं प्रतिभासते। यथा स्वप्ने नास्ति चित्ताद् बाह्यचित्तं ग्राह्यग्राहकाभावात् चित्तमपि ग्राहकं भवति तस्माच्चित्तशरीराः सर्वधर्माः। तेषां ग्राह्यग्राहकशून्यता परमार्थं इत्येवमेकान्तेन निश्चित्य भ्रान्तिसमारोपितं भ्रान्तिचिह्नं सर्वधर्माणामाकारमपहाय तेषां प्रकृतिमेव केवलामद्वयविज्ञप्तिलक्षणां शुद्धस्फटिकसंकाशां शरदमलमध्याह्नगगनोपमामनन्तां पश्येत्। इदमुच्यते लोकोत्तरं शून्यताज्ञानं निष्प्रपञ्चं निर्विकल्पम्। ततस्तन्मन्त्रेणाधितिष्ठेत्—ॐ शून्यताज्ञानवज्रस्वभावात्मकोऽहम्। सैव भगवती प्रज्ञापारमिता सैव परमा रक्षा। (सा० मा०, पृ० 225-226)

सहजम्

[1]कक्कोले बोलकं क्षिप्त्वा कुन्दुरुं कुरुते व्रती।
तस्मिन् योगसमुद्भूतं कर्पूरं सहजं स्मृतम्॥ (दो० को० व्या०, पृ० 69)

चण्डालीयोगभावनया महासुखचक्रे चित्तस्थिरीकरणं हि सहजस्फुटीकरणकारणमिति।

(दो० को० व्या०, पृ० 71)

सहजस्य परिज्ञानेऽन्यं मोक्षं न किञ्चिदस्ति।....अन्यैः सर्वैर्मोक्षसमूहं यत् परिकल्पितं पृथक् पृथक् तत्सर्वं सहजमेवेति नान्यत्। ....सहजमजानानाश्च भ्रमन्ति संसारे घटीयन्त्रवत्। स च सद्गुरुपर्युपाश्रितेनोपलभ्यते। तत्र सहजे वाच्यवाचकौ न लभ्येते—

वाच्यवाचकसंबन्धान्न विद्येत् सहजस्त्रिषु।
देशनापदयोगेन स्थापितं भगवता क्वचित्॥
पुस्तके दृश्यमाने च सत्त्वार्थाय न संविदाम्।
यद् यद् द्रक्ष्यति वस्तुश्च भ्रान्तिरूपादिकल्पना॥
तत्तद्वस्तु न दृश्येत अभ्रान्तं गुरुपर्वया। इति।

....यत्किञ्चित् शास्त्रपुराणादिव्याख्यानं क्रियते, तत् सर्वं सहजस्यैव नान्यस्य।

(दो० को० व्या०, पृ० 86-87)

सहजमेकं परं तत्त्वमस्ति। (दो० को० व्या०, पृ० 155)

---

1. हेवज्रतन्त्र और उसकी टीका देखिये।

सिद्धयष्टकम्

अञ्जन-गुटिका-पादुका-सिद्धौषधि-मणि-मन्त्र-यक्षस्त्री-परपुरप्रवेशाख्यम् ।

(त० सं० टी०, पृ० 27)

सूर्यम्

सूर्यम् उत्पादाद्वयज्ञानम् । (च० को० व्या०, पृ० 49)

स्थविरः

स्थविरो यो दशवर्षोपपन्नः । (दो० को० व्या०, पृ० 84)

हरिणी

षड् विषयान् भवग्रहान् हरति खण्डयतीति हरिणी । सन्ध्याभाषया सैव ज्ञानमुद्रा ।

(च० को० व्या०, पृ० 21)

बौद्ध तन्त्रों में पीठोपपीठादि का विवेचन (२)

—बनारसी लाल—

पीठों के अध्ययन-क्रम में यह ध्यान देने की बात है कि जो 24 पीठ बाह्य मण्डल में, हैं वे देहस्थ भी हैं। जिस प्रकार बाह्य पीठों में डाकिनियाँ एवं वीरेश्वरियाँ स्थित हैं, उसी तरह देहस्थ पीठों में भी ये स्थित हैं। बौद्ध तन्त्रों में विशेषकर ज्ञानोदय तन्त्र, हेरुकाभिसमय एवं अभिसमय-मञ्जरी में बाह्य मण्डल के साथ अध्यात्म मण्डल, दश भूमियाँ, दश ज्ञान, तत् तत् पीठों में स्थित डाकिनियां, वीरेश्वरियाँ एवं दश पारमिता आदि को काय, वाक् और चित्त चक्र (हेरुक रूप) में विभाजित किया है। तदनुसार प्रत्येक चक्र में उसकी भावनाविधि बतलाई गई है। भावना की जो विधि है, तदनुसार 'स्वभावशुद्धाः सर्वधर्माः स्वभावशुद्धोऽहमिति, प्रकृतिपरिशुद्धाः सर्वधर्माः प्रकृतिपरिशुद्धोऽहमिति' की भावना कर स्वदेह को मण्डल में स्थित देवता 'हेरुक' रूप में परिवर्तित कर प्रथमतः चित्त, वाक् फिर काय चक्र की भावना करनी चाहिये। इन तीनों चक्रों के स्वरूप का वर्णन आगे किया जा रहा है।

यद्यपि नामभेद से पीठों की संख्या बढ़ जाती है, जिसे 'धीः' प्रथमांक में दिया जा चुका है। तथापि हेवज्रतन्त्र को छोड़ कर अन्य सभी में 24 ही पीठों का वर्णन पाया जाता है। इसी क्रम में इन पीठों के बोधक बीजाक्षर भी हैं। प्रत्येक चक्र के भावना-क्रम में भूमियाँ, पारमिताएँ, ज्ञान, पीठ स्थान, वीरेश्वरियाँ एवं डाकिनियाँ व्यवस्थित हैं।

चक्रों की व्यवस्था

I चित्तचक्र

अष्टार नीलवर्ण वज्रावली चित्तचक्र का स्वरूप है। पीठों में पूर्व में पुल्लीरमलय, पश्चिम दिशा में जालन्धर, उत्तर में ओडियान एवं दक्षिण में अर्बुद स्थित हैं। आग्नेय में गोदावरी, नैऋर्त्य में रामेश्वर, वायव्य में देवीकोट और ऐशान्य में मालव स्थित हैं। इन आठ पीठ-उपपीठों में स्वदेहस्थ चित्तचक्र में शिर, शिखा, दक्षिण कर्ण, पृष्ठवंश, वाम कर्ण, भ्रूमध्य, चक्षुर्द्वय, बाहूमूल क्रमशः स्थित हैं। इन प्रत्येक पीठ-उपपीठों में खण्डकपाली, महाकङ्काल, कङ्काल, विकटदंष्ट्री, स्वरवैरिण, अमिताभ, वज्रप्रभा एवं वज्रदेह डाकिनियां क्रमशः स्थित हैं। स्वदेहस्थित चित्तचक्र या अध्यात्म-मण्डल में क्रमशः नाडियां स्थित हैं। ये नाडियां हैं—अजनाडी, नाडी, महानाडी, नाडी, रजानाडी, पटानाडी, भगनाडी, छोतानाडी एवं महानाडी, जो क्रमशः नखदन्तवाह, केशरोमवाह, त्वग्वाह, मांसवाह, स्नायुवाह, अस्थिवाह, रक्तवाह, हृदयवाह कृत्यात्मक हैं। बाह्य चित्तचक्र में ये नाडियां

प्रचण्डा, चण्डाक्षी, प्रभामती, महानासा, विरमती, खर्वरी, लंकेश्वरी एवं द्रुमच्छाया वीरेश्वरियों के रूप में स्थित हैं। चित्तचक्र का बोधक मन्त्र 'हूँ' है, जो धर्मकाय को भी द्योतित करता है। इस चक्र में स्थित डाकिनियां एवं वीरेश्वरियां खेचरी हैं तथा स्वर्गलोकवासिनी हैं। इसे अधिक स्पष्ट करने के लिए (पृष्ठ 68-69) एक तालिका प्रस्तुत की जा रही है। चित्तचक्र को तालिका में 1 से 8 तक के क्रमों द्वारा जाना जा सकता है।

II वाक्चक्र

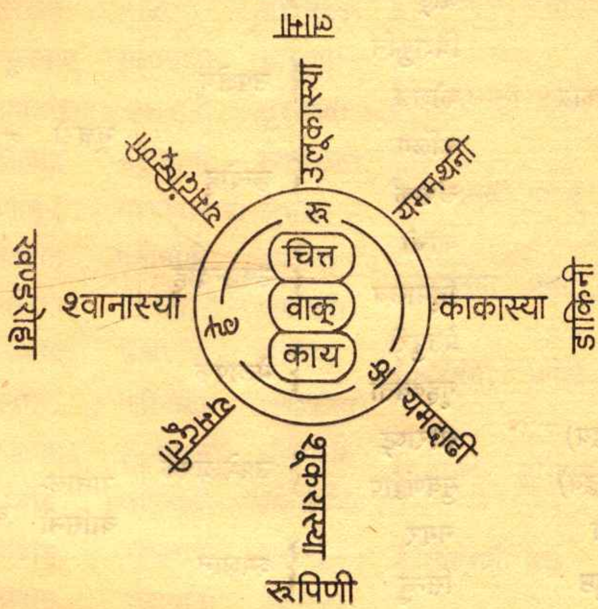
वाक्चक्र का स्वरूप रक्तपद्मावली है। इसके अन्तर्गत क्षेत्र, उपक्षेत्र, छन्दोह, उपछन्दोह के पीठ स्थान संगृहीत हैं। इस चक्र में प्रथमतः पूर्व में कामरूप, उत्तर में ओड्र, पश्चिम में त्रिशकुनि एवं दक्षिण में कौशल स्थित हैं। देहस्थ अध्यात्म वाक्चक्र में क्रमशः पूर्व, उत्तर, पश्चिम एवं दक्षिण दिशा में कक्ष, स्तन, नाभि एवं नासिकाग्र भाग संगृहीत हैं। कोणों में आग्नेय दिशा में कलिंग, नैर्ऋत्य में लंपाक, वायव्य में कांची एवं ऐशान्य में हिमालय स्थित हैं। देहस्थ अध्यात्म वाक्चक्र की आग्नेयादि दिशाओं में क्रमशः मुख, कण्ठ, हृदय एवं मेढ्र स्थित हैं। क्रमशः इन सभी क्षेत्रोपक्षेत्रादि पीठ स्थानों में अंकुरिक, वज्रजटिल, महावीर, वज्रहूंकार, सुभद्रगुण, वज्रभद्रा, महाभैरव, और विरूपाक्ष नामक डाकिनियां विद्यमान हैं। स्वदेहस्थ वाक्चक्र में महानाडी, नाडी, प्रभानाडी, हलानाडी, महानाडी, सौख्यनाडी, तनानाडी एवं सितानाडी स्थित हैं, जो क्रमशः अक्षिवाह, पित्तवाह, फुप्फुसवाह, अन्त्रमालावाह, वति(स्ति)वाह(?), बलवाह, पुरीषवाह और सीमान्तवाहात्मक हैं। बाह्य वाक्चक्र में ये ऐरावती, महाभैरवी, वायुवेगा, सुराभक्षी, श्यामादेवी, सुभद्रा, हयकर्णा एवं खगानना नामक वीरेश्वरियों के रूप में स्थित हैं। वाक्चक्र का बोधक बीजाक्षर मन्त्र 'आ' है और यह संभोग-काय का द्योतक है। इस चक्र में स्थित डाकिनियाँ एवं वीरेश्वरियाँ भूचरी एवं मर्त्यलोकवासिनी हैं। वाक्चक्र के स्वरूप को स्पष्टतया तालिका की संख्या 9 से 16 तक के क्रमों से जाना जा सकता है।

III कायचक्र

कायचक्र का स्वरूप शुक्लवर्ण चक्रावली है। इस चक्र को आठों दिशाओं में मेलापक, उप-मेलापक, श्मशान और उपश्मशान के पीठ हैं। इस चक्र में पूर्व में प्रेतपुरी, उत्तर में गृहदेवता, पश्चिम में सौराष्ट्र एवं दक्षिण में सुवर्णद्वीप स्थित हैं। कोणों में आग्नेय में नगर, नैर्ऋत्य में सिन्धु, वायव्य में मेरु एवं ऐशान्य में कुलता पीठस्थान स्थित हैं। अध्यात्म कायचक्र की दिशाओं में क्रमशः लिंग, गुदा, ऊरुद्वय, जंघाद्वय, अंगुलि, पादपृष्ठ, अंगुष्ठ एवं जानुद्वय स्थित हैं। कायचक्र की आठों वलियों में महाचण्ड, रत्नवज्र, हयग्रीव, आकाशगर्भ, श्रीहेरुक, पद्मनर्तेश्वर, वैरोचन, वज्रसत्त्व नामक डाकिनियाँ विद्यमान हैं। देहस्थ अध्यात्म कायचक्र में नाडी, नटीनाडी, स्फुटानाडी, लतानाडी, बलानाडी, शठानाडी, गणानाडी, समानाडी स्थित हैं, जो क्रमशः श्लेष्मवाह, पूयवाह, लोहितवाह,

स्वेदवाह, मेदावाह, अश्रुवाह, खेटवाह एवं बलसिंघाणवाहात्मक हैं। बाह्य कायचक्र में ये चक्रवेगा, खण्डरोहा, शौण्डिनी, चक्रवर्मिणी, सुवीरा, महाबला, चक्रवर्तिनी एवं महावीर्या वीरेश्वरियों के रूप में स्थित हैं। कायचक्र का बोधक मन्त्र 'ॐ' है और यह निर्माणकाय का द्योतक भी है। इस चक्र में स्थित डाकिनियाँ एवं वीरेश्वरियाँ पातालवासिनी हैं। इन्हें तालिका में संख्या 17 से 24 तक के क्रमों में दर्शाया गया है।

तालिकोक्त काय-वाक्-चित्त चक्र हेरुक रूप हैं। ये देहस्थ एवं बाह्य मण्डल में अवस्थित हैं। इस विश्वरूप मण्डल के पूर्व में काकास्या, उत्तर में उलूकास्या, पश्चिम में श्वानास्या एवं दक्षिण में शूकरास्या विद्यमान हैं। आग्नेयादि कोणों में यमदाढी, यममथनी, यमदंष्ट्रिणी एवं यमदूती स्थित हैं। इस मण्डल के चारों द्वारों पर डाकिनी, लामा, खण्डरोहा एवं रूपिणी स्थित हैं। इसे निम्न तालिका में प्रस्तुत किया जा रहा है—



	दिशा	देहस्थपीठ	बाह्यपीठ	पीठ		चक्र	स्वरूप	बीजाक्षर
1	पूर्व	शिर	पुल्लीरमलय	पीठ	खेचरी	चित्तचक्र	अष्टार नील वर्ण वज्रावलि	पं
2	पश्चिम	शिखा	जालन्धर					जं
3	उत्तर	दक्षिणकर्ण	ओडियान					ओं
4	दक्षिण	पृष्ठवंश	अर्बुद					आं
5	आग्नेय	वामकर्ण	गोदावरी	उपपीठ				गों
6	नैर्ऋत्य	भ्रूमध्य	रामेश्वर					रां
7	वायव्य	चक्षु(द्वय)	देवीकोट					दं
8	ऐशान्य	बाहूमूल (स्कन्ध)	मालव					मां
9	पूर्व	कक्ष(द्वय)	कामरूप	क्षेत्र	भूचरी	वाक्चक्र	रक्तपद्मावलि	कां
10	उत्तर	स्तन	ओड्र					ओं
11	पश्चिम	नाभि	त्रिशकुनि	उपक्षेत्र				त्रिं
12	दक्षिण	नासिकाग्र	कौशल					कां
13	आग्नेय	मुख	कलिंग	छन्दोह				कां
14	नैर्ऋत्य	कण्ठ	लंपाक					लां
15	वायव्य	हृदय	कांची	उपछन्दोह				कां
16	ऐशान्य	मेढ्र	हिमालय					ह्रीं
17	पूर्व	लिंग	प्रेतपुरी	मेलापक	पाताल-वासिनी	कायचक्र	शुक्लवर्ण चक्रावलि	प्रं
18	उत्तर	गुद	गृहदेवता					गृं
19	पश्चिम	ऊरु(द्वय)	सौराष्ट्र	उपमेलापक				सां
20	दक्षिण	जंघा(द्वय)	सुवर्णद्वीप					सुं
21	आग्नेय	अंगुली	नगर	श्मशान				नं
22	नैर्ऋत्य	पादपृष्ठ	सिन्धु					सिं
23	वायव्य	अंगुष्ठ	मेरु	उपश्मशान				मं
24	ऐशान्य	जानु	कुलता					कं

तालिका

डाकिनी	नाडीकृत्य	नाडी	वीरेश्वरी	भूमि	पारमिता	ज्ञान	मन्त्र	काय
शिखण्डकपालि	नखदन्तवाह	अजानाडी	प्रचण्डा	प्रमुदिता	दान	दुःखज्ञान	हूं	धर्म
महाकंकाल	केशरोमवाह	नाडी	चण्डाक्षी					
कंकाल	त्वग्वाह	महानाडी	प्रभामती					
विकटद्रंष्ट्री	मांसवाह	नाडी	महानासा					
स्वरवैरिण	स्नायुवाह	रजानाडी	विरमती	विमला	शील	समुदयज्ञान		
अमिताभ	अस्थिवाह	पटानाडी	खर्वरी					
वज्रप्रभा	रक्तवाह	भगानाडी	लंकेश्वरी					
वज्रदेह	हृदयवाह	छोतानाडी	द्रुमच्छाया					
अंकुरिक	अक्षिवाह	महानाडी	ऐरावती	प्रभाकरी	क्षान्ति	निरोधज्ञान	आ	संभोग
वज्रजटिल	पित्तवाह	नाडी	महाभैरवी					
महावीर	फुफ्फुसवाह	प्रभानाडी	वायुवेगा	अर्चिष्मती	वीर्य	मार्गज्ञान		
वज्रहूंकार	अन्त्रमालावाह	हलनाडी	सुराभक्षी					
सुभद्रगुण	बस्तिवाह	महानाडी	श्मामादेवी	अभिमुखी	ध्यान	क्षयज्ञान		
वज्रभद्रा	बलवाह	सौख्यदानाडी	सुभद्रा					
महाभैरव	पुरीषवाह	तनानाडी	हयकर्णा	सुदुर्जया	प्रज्ञा	अनुत्पाद०		
विरूपाक्ष	सीमन्तवाह	सितानाडी	खगानना					
महाचण्डा	श्लेष्मवाह	नाडी	चक्रवेगा	दूरंगमा	उपाय	धर्मज्ञान	ॐ	निर्माण
रत्नवज्र	पूयवाह	नटीनाडी	खण्डरोहा					
हयग्रीव	लोहितवाह	स्फुटानाडी	सौण्डिनी	अचला	प्रणिधान	अद्वयज्ञान		
आकाशगर्भ	स्वेदवाह	लतानाडी	चक्रवर्मिणी					
श्रीहेरुक	मेदावाह	बलानाडी	सुवीरा	साधुमती	बल	संवृतिज्ञान		
पद्मनर्तेश्वर	अश्रुवाह	शठानाडी	महाबला					
वैरोचन	खेटावाह	गणानाडी	चक्रवर्तिनी	धर्ममेघा	ज्ञान	परचित्त०		
वज्रसत्त्व	बलसिंघाणवाह	समानाडी	महावीर्या					

बौद्ध तन्त्रों की कुछ मुद्राएँ (२)

—जनार्दन पाण्डेय—

'धी:' के प्रथम अङ्क में साधनमाला एवं योगाम्बरतन्त्र से तथा बौद्धेतर ग्रन्थों में शारदातिलक एवं परशुरामकल्पसूत्र से 122 मुद्राओं के लक्षण उद्धृत किये गये थे, प्रस्तुत अंक में मञ्जुश्रीमूलकल्प से 88 मुद्राओं के लक्षण दिये जा रहे हैं। इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज से 1920, 1922, व 1925 ई० में तीन खण्डों में प्रकाशित हुआ था। द्वितीय संस्करण मिथिला विद्यापीठ, दरभङ्गा (बिहार) से 1964 ई० में प्रकाशित हुआ है। यहाँ प्रत्येक मुद्रालक्षण की पृष्ठसंख्या द्वितीय संस्करण से दी गई है।

सामान्य मुद्रानुक्रमणी

पुण्डरीक	लिङ्ग
पूर्ण	वक्र
प्रज्ञापारमिता	वज्र
फर	वज्रदण्ड
भद्रपीठ	वरद
भिण्डिपाल	वरहस्त
भेरी	विमान
मनोरथ	वीण
मयूरासन	शक्ति
महाशूल	शङ्कल
माला	शङ्ख
मीषितोरण	शतघ्ना
सुतोरण	शयन
मुद्गर	शूल
मुसल	समलिङ्ग
यमल	सम्पुट
यष्टि	सम्पुटा
रज्जु	स्यन्दन
लाङ्गल	स्वस्तिक

विभिन्न देवताओं की समय मुद्राएँ

अवलोकितेश्वर समयमुद्रा	तेजोराशि महामु०
आर्यभृकुटी समयमु०	धर्मचक्र महामु०
उष्णीषराज समयमु०	बुद्धस्य खखरमु०
एकाक्षरचक्रवर्ती महामूलमु०	बुद्धस्य समयमु०
तारासमय मु०	मञ्जुश्रीकुमारस्य समयमु०
	महावज्रासन मूलमु०

मुद्राओं के लक्षण

अग्निकर्मप्रसाधिका

तदेव हस्तौ संकोच्य मुक्त्वा वेणिं समुच्छ्रयेत् ।
तदेव विधिना बद्ध्वा अन्येनाङ्गुष्ठमध्ययोः ॥

मध्यपर्वं समाश्लिष्य उभयाग्रयं करं पुनः।
दत्त्वाऽभिमुखं ह्यग्नेर्वह्निमन्त्रसुयोजितः ॥
आवाहयेच्छिखिनं होमे अग्निकर्मसु सर्वदा।
विसर्जयेदनेनैव तर्जन्यग्रविमिश्रितैः ॥
अङ्गुष्ठे नित्यमाश्लिष्टे विसर्ज्यं वह्निदैवतम्।
मुद्रा बहुमता ह्येषा अग्निकर्मप्रसाधिका ॥
तदेव = शङ्कलावदेव। (मञ्जुश्रीमूलकल्पे 33.172-175, पृ॰ 288)

अङ्कुश

तदेव हस्तौ विन्यस्तौ उभौ कृत्वा तु तत्समौ।
वामपाणोपरि न्यस्तदक्षिणं तु करं तथा ॥
तदेवमङ्कुशाकारं मध्यमाङ्गुलितर्जनी।
मध्यमं पर्वमाश्लिष्य तर्जनी कारयेदङ्कुशम् ॥
तदेव = पाशवदेव। (म॰ मू॰ क॰ 33.100-101, पृ॰ 283)

बौद्धेतर ग्रन्थों में अङ्कुश मुद्रा

दक्षमुष्टिगृहीतस्य वाममुष्टेस्तु मध्यमाम्।
प्रसार्य तर्जन्याकुञ्चेत् सेयमङ्कुशमुद्रिका ॥
(शारदातिलकटीका 4.4, पृ॰ 135)

अर्धचन्द्र

तदेव हस्तौ विन्यस्तौ संश्लिष्याङ्गुलिभिः समम्।
सम्पुटाकोशविन्यस्तं तर्जन्येकं तु दक्षिणम् ॥
कुर्यात्तु वक्रतो ह्यग्रे अर्द्धचन्द्रं(न्द्रः) स उच्यते ॥
तदेव = शयनवदेव। (म॰ मू॰ क॰ 33.293, पृ॰ 293)

उत्पल

तदेव करसंयुक्तौ विन्यस्तं अङ्गुलीचितम्।
उभौ तर्जन्यौ संकोच्य सूच्यादञ्जलिसादृशम् ॥
विन्यस्ताङ्गुष्ठयुगले मध्याङ्गुष्ठौ प्रसारितौ।
अनामिकां वेष्टयित्वा तु उत्पलेति उदाहृतम् ॥
तदेव = एकशिखावदेव। (म॰ मू॰ क॰ 33·52-53, पृ॰ 279)

एकशिखा

तदेव हस्तौ विन्यस्तौ कुर्यादेकशिखं तथा।
मध्यमाङ्गुलिसंश्लिष्टौ भवेदेकशिखा ध्रुवम् ॥
तदेव = त्रिशिखावदेव। (म० मू० क० 33.49, पृ० 279)

कलश

तदेव खखरं ईषदवनाम्यं तु शोभनम्।
कुर्यादङ्गुष्ठविन्यस्तं कलशं तदिहोच्यते ॥
(म० मू० क० 33.155, पृ० 286)

कुन्त

पुनः प्रसारयंस्तदेकं तु दक्षिणं करमुत्तमम्।
कुर्यात् सूचिकाकारं मध्यतर्जनिमङ्गुलौ ॥
ईषत्संकुचिताग्रं तु अङ्गुलीनां नतोत्तमम्।
स्थितिकां कारयेत् तत्र सुन्यस्तं तर्जनी तु तम् ॥
कुर्यात् संश्लेषिते तत्र अनामिकापर्वमिश्रिता।
मुद्रेयं कुन्तनिर्दिष्टा बहुधा लोकनायकैः ॥
(म० मू० क० 33.226-228, पृ० 292)

कुम्भ

उभौ संपुटौ कृत्वा हस्तौ विन्यस्तशोभनौ।
अङ्गुलिमङ्गुलीभिश्च अन्योन्याग्रश्लेषितौ ॥
उत्थितां नाभिं संकोच्य कुम्भमुद्रमुदाहृतम्।
(म० मू० क० 33.152-153, पृ० 286)

बौद्धेतर ग्रन्थों में कुम्भ मुद्रा

दक्षाङ्गुष्ठे पराङ्गुष्ठं क्षिप्त्वा हस्तद्वयेन तु।
सावकाशात्मकं मुष्टिं कुर्यात् कुम्भस्य मुद्रिका ॥
(शारदातिलकटीका 4.4, पृ० 235)

केतु

तदेवमङ्गुलिभिर्वेष्ट्य अङ्गुष्ठौ उपरिस्थितौ।
न्यस्य पर्वतले न्यस्तं केतुमित्याहुर्मुद्रितम् ॥
तदेव = अभयमुद्रावदेव। (म० मू० क० 33.198, पृ० 290)

खड्ग

तथैव खड्गनिर्दिष्टा अनामिकाग्रैः सुकोचितैः।

तथैव = गदावदेव। (म० मू० क० 33.94, पृ० 282)

गज

तदेव हस्ततलम् ऊर्ध्वं दक्षिणं वामतोच्छ्रितम्।
अधस्तात् कारयित्वा तु गजाकारं सुयोजितम्॥
दक्षिणमध्यमाङ्गुल्यां कराकारं तु कारयेत्।
एतद् गजमुद्रं तु निर्दिष्टं संसारपारगैः॥

तदेव = धर्मभेरीवदेव। (म० मू० क० 33.191-192, पृ० 289)

गदा

तदेव हस्तौ विन्यस्तौ संश्लिष्टावङ्गुलीभिः तत्।
गदाकारं तदा कुर्यान्मूलेनापि वेष्टितम्॥
उभयोरङ्गुष्ठयोर्मध्ये कन्यसीभिः सुवेष्टितम्।
षड्भिरङ्गुलिभिः कुर्यात् शून्याकारं सुशोभनम्॥
एतन्मुद्रा गदा प्रोक्ता सर्वदानवनाशिनी॥

तदेव = फरवदेव। (म० मू० क० 33.90-92, पृ० 282)

बौद्धेतर ग्रन्थों में गदामुद्रा

वाममुष्ट्यन्तरेऽङ्गुष्ठे दक्षिणे सरलाङ्गुलीः।
वामाङ्गुष्ठः स्पृशेदग्रे योजितः सरलोदरः॥
अन्योन्याभिमुखौ हस्तौ कृत्वा तु ग्रथिताङ्गुलीः।
अङ्गुल्यौ मध्यमे भूयः संलग्ने सुप्रसारिते॥
गदा मुद्रेयमाख्याता भुक्तिमुक्तिकरी तथा।

(शारदातिलकटीका 15.10, पृ० 608)

घण्टा

तथैव हस्तौ कुर्वीत प्रसारिताग्रं तु कुञ्चितम्।
शरावाकारसमौ कृत्वा अङ्गुलीभिः समन्ततः।
घण्टां तु विदुर्बुद्धाः प्रकाशयामास देहिनाम्॥

तथैव = खड्गवदेव। (म० मू० क० 33.95, पृ० 282)

चिन्तामणिरत्नमहामुद्रा

तदेव हस्तौ करसंपुटाकारौ सविचित्रवेणिकाबद्धौ ललाटदेशे स्थापयेत्, चित्रहस्तं तदेव भगवतां बुद्धानां चिन्तामणिरत्नमहामुद्रा ।

तदेव = खखरवदेव । (म० मू० क० 34, पृ० 306)

छत्र

तदेव हस्तं विन्यस्तं यष्ट्याकारसमुच्छ्रितम् ।
दक्षिणं तु करं कृत्वा विसृतं छत्रमुच्यते ॥
तदेव = यष्टिवदेव । (म० मू० क० 33.70, पृ० 281)

तद्गतचारिणी

तदेव हस्तौ संयुक्तौ संपुटाकारशोभनौ ।
उच्छ्रितौ मध्यमाङ्गुल्यौ मुद्रा तद्गतचारिणी ॥
तदेव = वरहस्तवदेव । (म० मू० क० 33.197, पृ० 290)

तोमर

तदेव मुद्गरमीषच्चालयेत् करसंपुटे ।
तोमरं कथितं ह्यग्रं मुद्रं शत्रुविनाशनम् ॥
तदेव = मुद्गरवदेव । (म० मू० क० 33.149, पृ० 286)

त्रिशिखा

तथैव हस्तौ विन्यस्तौ कुर्यात् तत्करसंपुटम् ।
तत्रैव त्रिशिखं कुर्यात् अङ्गुलीभिर्विमिश्रितम् ॥
उभौ हस्तौ यदाङ्गुष्ठौ शून्याकारौ तु मिश्रितौ ।
मध्यमानामिके चैव विपरीताकारवेणिके ।
एतत् तत् त्रिशिखं ज्ञेयं त्रिचोराकार इति पुनः ॥
तथैव = पञ्चशिखावदेव । (म० मू० क० 33.45-47, पृ० 279)

दंष्ट्र, वक्र

उत्पलं तु ततो बद्ध्वा अनामिकाङ्गुलिभिस्तथा ।
अधस्तादङ्गुष्ठयोर्मध्ये विन्यस्तं च प्रदर्शितम् ॥
एतद् दंष्ट्रमिति प्रोक्तं विवृते वक्रमुच्यते ॥
(म० मू० क० 33.150, पृ० 286)

द्विलिङ्ग

तथैव तद् द्विधा कृत्वा द्विलिङ्गः समुदाहृतः।
तद् = लिङ्गमुद्रम्। (म० मू० क० 33.142, पृ० 286)

धनुः

तदेव मालां संकोच्य संपुटाकारसंभवम्।
तर्जन्यावुभौ संश्लिष्य कुर्याद्धनुःसन्निभम्॥
अङ्गुष्ठौ पीडयेन्मुष्टौ धनुर्मुद्रा सा लक्ष्यते।
मालाम् = मालामुद्राम्। (म० मू० क० 33.143, पृ० 286)

बौद्धेतर ग्रन्थों में धनुर्मुद्रा

वामस्य मध्यमाग्रं तु तर्जन्यग्रे नियोजयेत्।
अनामिकां कनिष्ठां च तस्याङ्गुष्ठेन पीडयेत्॥
दर्शयेद् दक्षिणस्कन्धे धनुर्मुद्रेयमीरिता।
अथवेयं धनुर्मुद्रा—
बाहुमूलं सृजेत्तेन बाह्वग्रेणैव साधकः।
धनुर्मुद्रा यशःकीर्तिबलवीर्यविवर्धिनी।
(शारदातिलकटीका 17.22, पृ० 684)

धर्मचक्र

उभौ हस्तौ समायुक्तौ मध्यमाङ्गुलिमुच्छ्रितौ।
संकोच्यानामिकाङ्गुष्ठौ कन्यसौ सूचिमाश्रितौ॥
उभौ तर्जनिसंश्लिष्टौ मध्यपर्वाग्रकुञ्चितौ।
मध्यमौ सूचिसमौ न्यस्तौ चक्राकारसमुद्भवौ॥
एतत्तु धर्मचक्रं वै मुद्राराजमिहोदितम्।
(म० मू० क० 33.213-215, पृ० 291)

धर्मभेरी

तदेव उच्छ्रितौ हस्तौ अङ्गुल्यग्रौ सुकुञ्चितौ।
सर्वैरङ्गुलिभिर्मुक्ता विरलावेशसम्भवा॥
भेरीं तु तां विदुर्बुद्धा धर्मभेरीति उच्छ्रितौ॥
तदेव = भेरीवदेव। (म० मू० क० 33.189-190, पृ० 209)

ध्वज

उभौ हस्तौ तथा कृत्वा वामतर्जनिमाश्रितम् ।
दक्षिणं तु करं कृत्वा तस्य अङ्गुलितः स्थितम् ॥
तर्जन्या मध्यमा चैव विसृते ध्वजमुच्यते ।
ध्वजमुद्रा इति ख्याता उच्छ्रिता शक्रधारिणी ॥

तथा = पूर्णमुद्रावत् । (म० मू० क० 33.62-63, पृ० 280)

नमस्कार

तदेवमञ्जलिं कृत्वा प्रणामाकारं जगद्गुरुम् ।
सा नमस्कारमुद्रेयं सर्वलोकेषु विश्रुता ॥

(म० मू० क० 33.244, पृ० 293)

नाराच

तदेवमञ्जलिं कुर्याद् दक्षिणकरनिःसृता ।
वामं तर्जनीमुष्टौ निष्पीड्यते तु पर्वणि ॥
नाराचं मुद्रमित्युक्तं··· ··· ···· ···· ···· ········ ॥

(म० मू० क० 33.144-145, पृ० 286)

पञ्चशिखा

आदौ तावत् करे न्यस्तमुभयाग्रां करे स्थितौ ।
अन्योन्याङ्गुलिमावेष्ट्य सन्मित्रां च पुनस्ततः ॥
उभौ करौ समायुक्तौ पञ्चचूलासुचिह्नितौ ।
विपर्यस्तस्ततस्तेषामङ्गुलीनां तु अग्रतः ॥
मुद्रा पञ्चशिखा ज्ञेया पञ्चचीरकमेव तु ।

(म० मू० क० 33.40-41, पृ० 279)

पट

समौ कृत्वा ततस्तेषामङ्गुलीनां समन्ततः ।
उरे दत्त्वाऽपसव्यं वै क्षिपेत् त्वा पटमुच्यते ॥

समौ = हस्ताविति शेषः । (म० मू० क० 33.151, पृ० 286)

पटह

तदेव हस्तं विन्यस्तं पटहाकारसंभवम् ।
आबन्धेदङ्गुलिभिर्युक्तं सर्वाभिश्च सवेणिकम् ॥

वेणिकां कृत्यमङ्गुष्ठैस्ततो न्यस्य करे पुनः ।
मध्ये प्रादेशिनीं कृत्वा उच्छ्रिताग्रं तु कारयेत् ॥
एतत् पटह निर्दिष्टं मुद्रा दुष्टनिवारिणी ।
तदेव = पर्यङ्कवदेव । (म० मू० क० 33.164-165, पृ० 287)

पट्टिश

उभौ करौ समायुक्तौ कुर्यादङ्गुलिमिश्रितौ ।
मध्यमं तु ततः शून्यं अङ्गुलिभिः समादिशेत् ।
मध्यपर्वविधिन्यस्तं शून्याग्रं कन्यसीमितम् ।
कारयेन्नित्यमन्त्रज्ञो अङ्गुष्ठौ कुञ्चिताश्रितौ ॥
त्रिसूच्याकारसंयुक्तौ पट्टिशं तं विदुर्बुधाः ।
(म० मू० क० 33.127-129, पृ० 285)

पद्म

तदेव हस्तौ विन्यस्तौ पद्माकारसमुच्छ्रितौ ।
प्रसारिताङ्गुलिभिः सर्वं मुद्रा पद्म इति स्मृतम् ॥
तदेव = लाङ्गलवदेव । (म० मू० क० 33.206, पृ० 290)

पद्मालया

उभौ हस्तौ पुनः कृत्वा आकाशौ विरलाङ्गुलौ ।
उभावङ्गुष्ठयोर्मध्या उभौ तर्जनिमाश्रितौ ॥
एषा पद्मालया मुद्रा संबुद्धैः कथिता जगे ।
(म० मू० क० 33.242, पृ० 293)

परशु

तदेव मूर्च्छिनाग्रेकं (?) शुभो निर्दिष्टमुद्रिणम् ।
उभौ तर्जन्यसमायुक्तौ अन्योन्याग्रविमिश्रितौ ॥
संकोच्य पर्वतोऽङ्गुष्ठाः कन्यसीति समुच्छ्रितौ ।
तदेव परशु निर्दिष्टा मुद्रा सर्वार्थसाधिका ॥
संकोच्य पुनः सर्वा वै सा मुद्रा लोकपूजिता ॥
तदेव = केतुवदेव । (म० मू० क० 33.199-200, पृ० 290)

पर्यङ्क

तदेव हस्तौ विन्यस्तौ मध्यमानामिकावधः ।
उपरिष्टात् तेषु वै नित्यं न्यस्तं दक्षिणवामवेष्टितम् ॥

संवेष्ट्याङ्गुष्ठयोर्न्यस्तौ कन्यसा तर्जनी तु ताम् ।
समन्तात् पर्यङ्कमाकारं मुद्रामाहुस्तथागताः ॥
एतत्पर्यङ्कमुद्रेति ख्यातं लोके समन्ततः ।
तदेव = मुसलवदेव । (म० मू० क० 33.158-159, पृ० 287)

पात्र

तदेव हस्तौ विन्यस्तौ दक्षिणं वामतोपरि ।
कृत्वा नाभिदेशे वै कोलस्थं निम्नमुद्भवम् ॥
उभौ हस्तौ तदाश्लिष्य सा मुद्रा पात्रमुच्यते ।
तदेव = प्रज्ञापारमितावदेव । (म० मू० क० 33.185, पृ० 289)

पाश

तदेव हस्तौ संमिश्रावुभौ बद्ध्वा तु संपुटम् ।
अन्योन्यं मिश्रयित्वा वै मध्यमाङ्गुलिभिस्तथा ॥
कुर्यात् तन्मण्डलाकारं पाशाकारं तु तद् भवेत् ।
तर्जनीति ततो न्यस्तं मध्यपर्वसुमिश्रितैः ॥
एष पाश इति ख्यातः मुद्रोऽयं बुद्धनिर्मितः ॥
तदेव = घण्टावदेव । (म० मू० क० 33.96-97, पृ० 286)

पीठ

तदेव भद्रपीठं तु मध्यमाङ्गुलिमाश्रितम् ।
उपरि स्थानविन्यस्तौ मध्यानामिति शारितौ ॥
तदेव पीठ निर्दिष्टा मुनिसिंहैर्जितारिभिः ।
तदेव = भद्रपीठवदेव । (म० मू० क० 33.108 पृ० 283)

पुण्डरीक

तदेव हस्तौ विन्यस्तौ संपुटाकारमुद्भवौ ।
श्लथकोशायताङ्गुल्य उभौ संकुचितौ शुभौ ॥
पुण्डरीकमिति ज्ञेयं मुद्रा सर्वार्थसाधिका ।
तदेव = धर्मचक्रवदेव । (म० मू० क० 33.223, पृ० 291)

पूर्ण

तदेव हस्तौ संमिश्र अन्योन्याङ्गुलिमिश्रितम् ।
पूर्णमुद्रेति तामाहुर्गतिज्ञानविशेषगाः ॥
(म० मू० क० 33.59, पृ० 280)

प्रज्ञापारमिता

तदेव हस्तौ संशुद्धौ उभौ अङ्गुलिमाश्रितौ ।
षड्भिरङ्गुलिमाश्लिष्टौ पुस्तकाकारसंभवौ ॥
उच्छ्रितौ वर्तुलौ कृत्वा कन्यसाङ्गुष्ठकौ चितौ ।
एषा मुद्रा वरा प्रोक्ता प्रज्ञापारमिताऽमिता ॥
तदेव = मनोरथवदेव । (म० मू० क० 33.183-184, पृ० 289)

फर

उभौ करौ समाश्लिष्य विपरीतं तु कारयेत् ।
दक्षिणं तु अधः कृत्वा वाममुत्तानकं सदा ॥
अन्योन्यमिश्रितौ ह्येतौ फरमित्याहुर्जिनोत्तमाः ।
(म० मू० क० 33.86, पृ० 283)

भद्रपीठ

तदेव हस्तौ संमिश्रविपरीताकारपिण्डिकाम् ।
मध्यमानामिकौ नाम्य अङ्गुल्यौ वामकरासृतौ ॥
तर्जनीकन्यसां चापि उभौ तर्जन्यदक्षिणा ।
दक्षिणा हस्तनिर्दिष्टा मध्यमानामिकनामितौ ॥
विपर्यस्तं ततो न्यस्तं श्लिष्टौ अङ्गुष्ठकारितौ ।
तदेव भद्रपीठं तु कथिता मुद्रवरा शुभा ॥
तदेव = अङ्कुशवदेव । (म० मू० क० 33.103-106, पृ० 283)

भिण्डिपाल-लाङ्गल

तदेवमुच्छ्रितं कुर्यात् तर्जन्याग्रसूचिकम् ।
भिण्डिपालस्ततो मुद्रा लाङ्गलं चक्रतो गतम् ॥
तर्जन्यौ वक्रतः कृत्वा लाङ्गलो वक्रमुत्तमम् ।
तदेव = परशुवदेव । (म० मू० क० 33.201-202, पृ० 290)

भेरी

ततः कृत्वा उभौ हस्तौ समन्तान्निम्नसंभवौ ।
अञ्जलिं तु ततः कृत्वा बाधायानससंभवम् ॥
मुद्रेयं भेरीति ख्याता त्रिषु लोकेषु हि तायिभिः ।
(म० मू० क० 33.231-232, पृ० 292)

मनोरथ

तदेव हस्तौ एकस्थौ सम्पूर्णाङ्गुलिमाश्रितौ ।
कुर्यादाकोशमञ्जल्यां श्लथं वर्तुलसंभवम् ॥
परिपूर्णं ततः कृत्वा कुड्मलं पद्मसंभवम् ।
मनोरथं तु तं विन्द्याद् मुद्रां सर्वार्थसाधिकाम् ॥
तदेव = अग्निकर्मप्रसाधिकावदेव । (म० मू० क० 33.177-178, पृ० 288)

मयूरासन

उभौ हस्तौ तथोन्मिश्र अङ्गुलीभिर्विचेष्टयेत् ।
ततो वेणिसमाधश्च कन्यसाङ्गुलिसूचिकाम् ॥
संकोच्य मध्यमतः क्षिप्रं पद्मपत्रायतोद्भवम् ।
उभयोरङ्गुष्ठयोन्मिश्रः स्थापयेत् स्थितकं सदा ॥
एतन्मयूरासनं प्रोक्तं संबुद्धैर्विगतद्विषैः ।
महाप्रभावा इयं मुद्रा पुरा ह्युक्ता स्वयंभुभिः ॥
(म० मू० क० 33.109-111, पृ० 283-284)

महाशूलमुद्रा

तथैव हस्तौ संन्यस्य तर्जन्यौ पाशसंभवौ ।
कन्यसौ सूचयेन्नित्यं मुष्टियोगेन योजितम् ॥
हस्तौ संपुटितौ नित्यौ अङ्गुष्ठावुच्छ्रितावुभौ ।
एषा मुद्रा महापुण्या महाशूले समागता ॥
तथैव = पञ्चशिखावदेव । (म० मू० क० 44.67-69, पृ० 376)

माला

तथैव मालामङ्गुल्यै सा माला परिकीर्तिता ।
तथैव = द्विलिङ्गवदेव (म० मू० क० 33.142, पृ० 286)

मीषितोरण

तदेव हस्तावुद्धृत्य कुर्यात् तर्जनिमुच्छ्रितौ ।
मध्यमाङ्गुलिमग्रं तु नामितं मीषितोरणम् ॥
तदेव = पात्रवदेव । (म० मू० क० 33.187, पृ० 289)

मुद्‌गर

तदेव हस्तौ निसृत्य मुष्टिं बद्‌ध्वा उभौ पुनः ।
अङ्‌गुष्ठौ स्थितकं कृत्वा मुद्‌गरं समुदाहृतम् ॥
तदेव = शूलवदेव । (म० मू० क० 33.148, पृ० 286)

मुसल

उच्छ्रितं तु पुनः कृत्वा तर्जन्या नाभिसंभवम् ।
चतुर्भिरङ्‌गुलिभिः कुर्यान्मुसलाकारसंभवम् ॥
मुद्रं मुसलमित्याहुः मन्त्रज्ञानसमन्विताः ।
(म० मू० क० 33.156-157, पृ० 287)

यमल

तदेव मुद्राविष्टभ्य हस्तौ यमलसम्भवौ ।
एषा यमलमुद्रा वै त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥
तदेव = नमस्कारवदेव । (म० मू० क० 33.245, पृ० 293)

यष्टि

तदेव हस्तौ विन्यस्तौ वामहस्तोपरि स्थितम् ।
दक्षिणं तर्जनीं गृह्य वामं तर्जनिमुच्छ्रिता ॥
एषा यष्टिरिति ख्याता मुद्रा शक्रनिवारिणी ।
तदेव = संपुटावदेव । (म० मू० क० 33.67-68, पृ० 281)

रज्जु

उभौ हस्तौ पुनः कृत्वा अङ्‌गुलीभिः समन्ततः ।
बद्‌ध्वा च वेणिकाकारं मुद्रैषा रज्जुरुच्यते ॥
(म० मू० क० 33.225, पृ० 292)

लिङ्ग

तदेव हस्तौ संवेष्ट्य मध्यानामिकमुच्छ्रितौ ।
उभौ करौ समायुक्तौ लिङ्गाकारसमुद्भवौ ॥
चतुरङ्‌गुलसंयुक्तं लिङ्गमुद्रमिति स्मृतम् ॥
तदेव = पट्टिशवदेव । (म० मू० क० 33.135, पृ० 285)

वज्र

उभौ हस्तौ समायुक्तौ तर्जनीभिः समुच्छ्रितौ ।
मध्यमाङ्‌गुलिभिर्युक्तं विन्यस्ताकारसंभवम् ॥

अङ्गुष्ठौ न्यस्य वै तत्र मध्यमाङ्गुलिपर्वयोः ।
तदेव कथितं वज्रं कन्यसं मुद्रमुत्तमम् ॥
(म० मू० क० 33.209-210, पृ० 290-291)

वज्रदण्ड

तदेव हस्तौ विन्यस्तौ उभौ तर्जन्यसूचितौ ।
उभौ मुष्टिसमं कृत्वा अङ्गुलीभिः समं पुनः ॥
तदेव मुद्रमाख्याता वज्रदण्डं मनीषिभिः ॥
तदेव = कुन्तवदेव । (म० मू० क० 33.229, पृ० 262)

वरद

तदेव हस्तं विक्षिप्य त्यज्य मुष्ट्यायताङ्गुलिम् ।
प्रसारितकराकारं वरदं मुद्रमुच्यते ॥
तदेव = पुण्डरीकवदेव । (म० मू० क० 33.224, पृ० 291)

वरहस्त

दक्षिणं हस्तमुद्यम्य अभयदत्तं परिकल्पयेत् ।
गृहीत्वा मणिबन्धे तु वामहस्तेन मुद्यतम् ॥
मध्यमां तर्जनीं स्पृष्ट्वा अङ्गुष्ठं मध्यतः स्थितम् ।
मध्यपर्वाश्रितं युक्तं वरहस्तं तदुच्यते ॥
(म० मू० क० 33.194-195, पृ० 289)

विमान

तदेवाञ्जलिमुत्सृज्य चित्रहस्ततलावुभौ ।
विमानमुद्रमित्याहुर् ऊर्ध्वसत्त्वनयानुगाः ॥
तदेव = भेरीवदेव । (म० मू० क० 33.233, पृ० 292)

वीणा

उभौ हस्तौ पुनः कृत्वा दक्षिणाङ्गुष्ठमुष्टितः ।
वामहस्तासृतैः सर्वैः अङ्गुलीभिः समोचितैः ॥
बद्ध्वा मुष्टिं कराग्रे तु दक्षिणाङ्गुष्ठमिश्रितः ।
तं दक्षिणैरेव समायुक्तैरङ्गुलीभिः पुटीकृतैः ॥
कन्यसां विसृतां कृत्वा वीणा मुद्रा उदाहृता ।
(म० मू० क० 33.240-241, पृ० 293)

शक्ति

तदेव हस्तौ कुर्वीत विन्यस्ताकारशोभनम् ।
अङ्गुष्ठाग्रप्रयुक्तं तु मध्यमाङ्गुलिसारितम् ॥
अनामिका कुञ्चिताग्रं मध्यपर्वे तु मध्यमम् ।
तदेव शक्तिर्निर्दिष्टा सर्वदुष्टनिवारिणी ॥

तदेव = छत्रवदेव । (म० मू० क० 33.73-74, पृ० 281)

शङ्कुल

तदेव हस्तौ विन्यस्तौ अङ्गुल्याग्रसवेणिकौ ।
भूयो दामोटयेद् यत्नात् अपसव्यं तु कारयेत् ॥
अधस्तात् सर्वतः कृत्वा शङ्कुलेति उदाहृता ।

तदेव = शङ्खवदेव । (म० मू० क० 33.170, पृ० 288)

शङ्ख

तदेव हस्तौ विन्यस्तौ अञ्जलिसुप्रयोजितौ ।
उभौ तर्जन्य संकोच्य कुण्डलाकारशोभनौ ॥
अङ्गुष्ठं ते अधः कृत्वा अङ्गुष्ठौ नामितौ उभौ ।
प्रविष्टौ मध्यपुटान्तःस्थौ शङ्खं भवति शोभनम् ॥

तदेव = पटहवदेव । (म० मू० क० 33.165-166, पृ० 287)

शतघ्ना

तदेव हस्तौ संयोज्य संपुटाकारकारितम् ।
विन्यस्ताङ्गुलिमञ्जल्यामन्योन्याश्लेषमाश्रितम् ॥
उभौ अङ्गुष्ठमाश्रित्य शतघ्ना मुद्रमुच्यते ॥

तदेव = वज्रदण्डवदेव । (म० मू० क० 33.230, पृ० 292)

शयन

तदेव हस्तौ उत्सृज्य उभौ कृत्वा पुनस्ततः ।
कुर्याच्चित्रतलं शुद्धं वेदिकाकारसंभवम् ॥
एतन्मुद्रवरं श्रेष्ठं लोकनाथैः सुपूजितम् ।
शयनं सर्वबुद्धानां जिनपुत्रैः समुदाहृतम् ॥

तदेव = स्यन्दनवदेव । (म० मू० क० 33.236-237, पृ० 292)

शूल

तदेव हस्तावुभौ कृत्वा अन्योन्याश्रितमङ्गुलम् ।
उभौ तर्जन्य संयोज्य शूलाकारं तु कारयेत् ॥
एतच्छूलमिति प्रोक्तं सत्त्वदुष्टानुशासनम् ।
तदेव = समलिङ्गवदेव । (म० मू० क० 33.147, पृ० 286)

समलिङ्ग

उभौ हस्तौ ततः कृत्वा अन्योन्याश्रितपण्डितौ ।
दक्षिणाकरमङ्गुष्ठं उच्छ्रितं लिङ्गसंभवम् ॥
समलिङ्गं तं विदुः शासनेऽस्मिन् विशारदाः ।
(म० मू० क० 33·146, पृ० 286)

सम्पुट

तदेव हस्तं विन्यस्तं शक्तिकाकारसंभवम् ।
विपरीतसम्पुटाकारं अन्योन्याङ्गुलिमिश्रितम् ॥
तदेव सम्पुटमित्याहुः संबुद्धा विगतद्विषः ॥
तदेव = शक्तिवदेव । (म० मू० क० 33.81, पृ० 281)

सम्पुटा

(1) ईषन्मूलगतौ हस्तौ अङ्गुष्ठौ च सुपीडितौ ।
सा भवेत् संपुटा मुद्रा शोकायासविनाशिनी ॥
(म० मू० क० 33.246, पृ० 293)

(2) तदेव हस्तौ विन्यस्तौ अङ्गुलीकारसंपुटौ ।
संपुटा सा भवेन्मुद्रा सर्वविघ्नप्रणाशिनी ॥
तदेव = ध्वजवदेव । (म० मू० क० 33.65, पृ० 280)

सुतोरण

तदेव उच्छ्रितौ कृत्वा कथयामास सुतोरणम् ।
तदेव = मीषितोरणवदेव । (म० मू० क० 33.188, पृ० 289)

स्यन्दन

तदेव हस्तौ संकोच्य स्यन्दनं तदिहोच्यते ।
तदेव = विमानवदेव । (म० मू० क० 33.234, पृ० 292)

स्वस्तिक

उभौ करौ तथा युक्तौ कुर्यादुत्तानकौ सदा।
तदेव संपुटं कृत्वा अङ्गुलीभिः समन्ततः॥
विन्यस्तं शोभनाकारं स्वस्तिकाकारसंभवम्।
मध्यमाङ्गुलिमध्ये तु कन्यसी तु समा भवेत्॥
अङ्गुष्ठयुगलविन्यस्तं मुद्रा स्वस्तिकमुच्यते।
(म० मू० क० 33.56-58, पृ० 280)

विशिष्ट समय मुद्राएँ

अवलोकितस्य समयमुद्रा

तदेव हस्तौ प्रसारितौ संपुटावस्थौ पद्मविकसिताकारौ अवलोकितस्य मुद्रा।
तदेव = बुद्धमुद्रावदेव। (म० मू० क० 34, पृ० 302)

आर्यभृकुट्याः समयमुद्रा

तदेव संकोच्य नेत्राकारं कृत्वा इयं मुद्रा आर्यभृकुट्याः।
तदेव = तारामुद्रावदेव। (म० मू० क० 34, पृ० 303)

उष्णीषराजस्य महामुद्रा

तदेव हस्तौ करसम्पुटाकारौ आवेणिकाङ्गुलिभिः कृत्वा मध्यमाङ्गुलीनां पर्वभागे तृतीये ईषदवनामयेत्, उष्णीषाकारं कारयेत्, इयं भगवतो उष्णीषराजस्य महामुद्रा।
(म० मू० क० 34, पृ० 305)

एकाक्षरचक्रवर्तिनो महामूलमुद्रा

तदेव हस्तौ संपुटाकारौ मध्यमाङ्गुलिप्रसारितौ सर्वत्राङ्गुल्यग्राभ्यन्तरस्थितौ कुण्डलाभोगाकारमीषदूर्ध्वानतमुष्णीषाकारं शिरस्युपरि धारयेत्। इयमेकाक्षरचक्रवर्तिनो महामूलमुद्रा।
(म० मू० क० 34, पृ० 304)

तारायाः समयमुद्रा

तदेव कन्यसौ संकोच्य पूर्ववत् तर्जन्याभिरङ्गुष्ठसमेतौ स्थितिका एव उत्पलकुड्मलाकारं दर्शयेत्।
तदेव = मञ्जुश्रीकुमारमुद्रावदेव। (म० मू० क० 34, पृ० 303)

तेजोराशेर्महामुद्रा

तदेव हस्तौ संकुचिताकारौ अन्योन्यसंकुचितसक्तौ सूच्याकारेण व्यवस्थितौ मध्यमाङ्गुलिप्रसारितौ सूचीकृतचिह्नौ अङ्गुष्ठौ द्वन्द्वपरामृष्टौ। इयं भगवतो तेजोराशेर्मुद्रा।
तदेव = मारविद्रावणवदेव। (म० मू० क० 34, पृ० 303)

भगवतो धर्मचक्रमहामुद्रा

तदेव करसंपुटं मध्यमाङ्गुल्या वेष्टितं कृत्वा कन्यसाङ्गुलिसूचीकृताम् उभौ अङ्गुष्ठाग्रयवाकारस्थितौ तर्जन्या प्रसारितौ कृतसूच्या कोशीकृतावुभौ निर्नामिकौ वक्रीकृतपर्यन्तौ सुविन्यस्तौ । इयं भगवतो धर्मचक्रमहामुद्रा । (म० मू० क० 34, पृ० 305)

भगवतो बुद्धस्य खखरमुद्रा

तदेव हस्तौ यमलिताकारौ मध्यमाङ्गुलिप्रसारितौ तर्जन्या परिवेष्टितौ कटकाकारेण पाशपरिवेष्टितौ उभौ कृतमण्डलाभोगौ । इयं च भगवतो बुद्धस्य खखरमुद्रा ।

(म० मू० क० 34, पृ० 305)

भगवतो बुद्धस्य समयमुद्रा

उभौ करौ कृताञ्जलिपुटौ अशुषिरौ ईषत्कुञ्चितौ कुड्मलाकारौ अकोशपद्मानलौ ।

(म० मू० क० 34, पृ० 302)

मञ्जुश्रियः कुमारस्य सकमुद्रा

उभौ हस्तौ पूर्ववत् करमावेष्टयित्वा अभ्यन्तरस्थिताभिरङ्गुलीभिः कन्यसातर्जन्योपरिष्टान्निष्पीडयेत् । (म० मू० क० 34, पृ० 302)

महावज्रासनस्य मूलमुद्रा

तदेव हस्तौ उभयचित्रीकृतौ अन्योन्योपरि स्थितौ दक्षिणार्थमथ वामसंपुटाकारस्थितौ अन्योन्याङ्गुष्ठकन्यसावेष्टितौ, इयं सर्वबुद्धानां महावज्रासनमहामुद्रा ।

(म० मू० क० 34, पृ० 303)

बौद्ध-शैव-शाक्त तन्त्रों में तुलनात्मक सामग्री (२)

—व्रजवल्लभ द्विवेदी—

[इस शोर्षक के अन्तर्गत 'धीः' के प्रथम अंक में सत्रह प्रकार के वचनों का संग्रह किया गया था। यहाँ पहले उस अंक में 3,4,6,9,13 और 17 संख्याओं की सामग्री से सम्बद्ध अन्य उपलब्ध वचनों का संग्रह तथा बाद में 18 से 28 तक की संख्याओं में नये विषयों का समावेश किया गया है।

तीसरी संख्या में संकलित तैत्तिरीयोपनिषद् के वचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आनन्द की ब्रह्मरूपता (मोक्षदशा में उसकी अभिव्यक्ति) वैदिक और तान्त्रिक दोनों मतों में समान रूप से मान्य है। चौथी संख्या में प्रदत्त महाभारत के वचन से यह ज्ञात होता है कि मार्कण्डेय पुराण के समान यहाँ भी दुर्वासा को उन्मत्त शब्द से विशेषित किया गया है। छठे वचन में भग शब्द की विष्णुपुराण-सम्मत व्याख्या के अतिरिक्त एक नई व्याख्या भी दी गयी है। नवीं संख्या में आलोकमाला के पूर्व उद्धृत वचन के साथ दो श्लोक और उद्धृत किये गये हैं। व्याख्याकार ने जिस तरह से इनको उद्धृत किया है, उससे ऐसा लगता है कि ये श्लोक भी आलोकमाला के ही हैं। सत्रहवीं संख्या में संकलित अन्तिम चरणसूत्र के वचन में चार ही महाभूतों की सत्ता मानी गयी है, आकाश की नहीं। चार्वाक चार ही महाभूतों को मानते हैं और प्राचीन बौद्धों को भी यह मत मान्य है। यहाँ का पहला वचन पचीसवीं संख्या में संकलित भक्ष्याभक्ष्य, पेयापेय विचार की तथा प्रथम दोनों वचन बाईसवीं संख्या में प्रदत्त पंचोपचार पूजा की भी व्याख्या करते हैं। अठारहवीं संख्या में काश्मीरीय शैव दर्शन में प्रदर्शित मध्यदशा का; मध्यविकास की पद्धति का संक्षिप्त वर्णन है। उन्नीसवीं संख्या में यह दिखाया गया है कि तत्त्वज्ञान के लिये मण्डलप्रवेश आदि की कोई आवश्यकता नहीं है। बीसवीं संख्या में हेवज्रतन्त्र तथा स्वच्छन्दतन्त्र के समान अभिप्राय वाले कुछ श्लोक दिये गये हैं। यह विषय हेवज्रतन्त्र के छोमापटल तथा स्वच्छन्दतन्त्र के छुम्मकाप्रकाश पटल में है। यहाँ वर्णित अन्य विषयों को भी भविष्य में संकलित किया जायेगा।

इक्कीसवाँ वचन दो ग्रन्थों में समान आनुपूर्वी से मिलता है तथा तीसरा श्लोकार्ध भी अन्ततः इसी अभिप्राय को जताता है। बाईसवें क्रम में पंचोपचार पूजाविषयक कुछ वचन संगृहीत हैं। भट्ट गंगाधर के स्तोत्र में इनकी आध्यात्मिक व्याख्या दी गयी है। बौद्ध तन्त्रों में सप्तविध अनुत्तरपूजा के प्रसंग में इसी प्रकार की व्याख्या देखने को मिलती है। साधनमाला (पृष्ठ 7) में गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य सम्बन्धी मन्त्र संकलित हैं। तेईसवें क्रम में यह दिखाया गया है कि बौद्ध शास्त्रों में चतुर्ब्रह्मविहार के नाम से व्याख्यात विषय पातंजल योगसूत्र तथा जैन ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र में भी वर्णित है। चौबीसवें क्रम में किसी विषय का वर्णन न होकर लेखन शैली का दिग्दर्शन है। हेवज्रतन्त्र में पाँच संख्या को दिखाने के लिये दशार्ध (दस का आधा) शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी तरह से नित्याषोडशिकार्णव की शिवानन्द रचित ऋजुविमर्शिनी टीका में छः संख्या को बताने के लिए द्वादशार्ध (बारह का आधा) शब्द प्रयुक्त हुआ है। कश्मीर का त्रिकदर्शन षडर्धशास्त्र के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ भी षडर्ध (छः का आधा) शब्द तीन संख्या को जताता है। त्रिकशास्त्र में तीन संख्या वाले अनेक पदार्थों का विश्लेषण किया जाता है।

पच्चीसवें क्रम में संकलित विषय की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। यहाँ मालिनीविजय की विधि और निषेध से सम्बद्ध यह टिप्पणी विशेष रूप से अवधेय है कि विधि और निषेध की कोई निश्चित परिभाषा नहीं की जा सकती। केवल एक ही बात पर यहाँ जोर दिया जाता है कि योगी को अपने चित्त को स्थिर बनाना चाहिये। जिस तरह से भी यह सम्भव हो, योगी को अपनी चर्या उसी प्रकार की बना लेनी चाहिये। इस विषय का अधिक परिचय लुप्तागमसंग्रह के द्वितीय भाग के संस्कृत उपोद्घात (पृष्ठ 212-217) से प्राप्त किया जा सकता है। छब्बीस से अठाईस तक के क्रम में समान आनूपूर्वी अथवा अभिप्राय वाले वचनों का संकलन है।]

3. आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च मोक्षेऽभिव्यज्यते।

[1]तत्त्वप्रकाशतात्पर्यदीपिका, पृ० 9

आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च [2]मोक्षे प्रतिष्ठितम्।

[3]योगिनीहृदयदीपिका, 3.108

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन।

तैत्तिरीयोपनिषत्, 2.4.1

4. दुर्वासा नृप दिग्वासास्तमथाभ्याजगाम ह।
बिभ्रच्चानियतं वेषमुन्मत्त इव पाण्डव॥

[4]महाभारत वनपर्व, 260.11-12

6. भगोऽस्यास्तीति बुद्धस्य भगवानिति कथ्यते।
भगानि षड्विधान्याहुरैश्वर्यादिगुणाखिलाः॥
अथवा क्लेशमाराणां भञ्जनाद् भगवानिति।

हेवज्रतन्त्र, 1.5.15

9. सावस्था काप्यविज्ञेया मादृशां शून्यतोच्यते।
न पुनर्लोकरूढेव नास्तिक्यार्थानुपातिनी॥
नास्तिता रूपमेवास्य व्यवहारार्थमस्तिता।
निःस्वभावेषु धर्मेषु कस्य चास्तित्वनास्तिता॥
न स्मर्तव्यं त्वयेत्युक्ते स्मरत्येव निषेधितम्।
यथा तथैवासच्छब्दात् सोत्तरं प्रतिपद्यति॥

दोहाकोशव्याख्या, पृ० 100-101

---

1. तात्पर्यदीपिकाकार कुमारदेव ने इसको श्रुतिवचन माना है।
2. 'मोक्षे' के स्थान पर 'देहे' यह पाठान्तर मिलता है।
3. दीपिकाकार अमृतानन्द इसको प्रामाणिक वचन मानते हैं।
4. यहाँ 15-16 श्लोकों में भी दुर्वासा को उन्मत्त शब्द से विशेषित किया गया है।

13. बज्झन्ति जेण जडा परिमुंचन्ति तेण बुधा ।
बोधिविभावनया विपरीतमिदं सकलम् ॥....
येन येन हि बध्यन्ते जन्तवो रौद्रकर्मणा ।
सोपायेन तु तेनैव मुच्यन्ते भवबन्धनात् ॥
अद्वयविवरणप्रज्ञोपायविनिश्चयसिद्धि, पृ० 217

कर्मणा येन वै सत्त्वाः कल्पकोटिशतान्यपि ।
पच्यन्ते नरके घोरे तेन योगी विमुच्यते ॥
ज्ञानसिद्धि, 1.15

येनैव नरकं यान्ति जन्तवो रौद्रकर्मणा ।
सोपायेन तु तेनैव मोक्षं यान्ति न संशयः ॥
चण्डमहारोषणतन्त्र, 7.26-27 पंक्ति

17. पेयापेयं स्मृता आपो भक्ष्याभक्ष्यं तु पार्थिवम् ।
सुरूपं च विरूपं च तत्सर्वं तेज उच्यते ॥
स्पृश्यास्पृश्यौ स्मृतो वायुश्छिद्रमाकाश उच्यते ।
नैवेद्यं च निवेदी च नैवेद्यं गृह्यते च यत् ॥
सर्वं पञ्चात्मकं देवि न तेन रहितं क्वचित् ।
इच्छामुत्पादयेदात्मा कथं शङ्का विधीयते ॥
[1]परात्रिंशिकाव्याख्या, पृ० 236

पञ्चरूपिणमात्मानं दिव्यैः पञ्चोपचारकैः ।
अर्पयेत् सह गन्धेन पृथिवीं कुसुमेन खम् ॥
धूपेन वायुं दीपेन तेजोऽन्नेन रसं पनः ।
योगिनीहृदयदीपिका, 3.112

विद्येति मातृकापीठं तत् पार्थिवमुदाहृतम् ।
मण्डलं कुण्डलीपीठं तदाप्यं परिकीर्तितम् ॥
मन्त्रसंज्ञं क्रियापीठं तैजसं तत्प्रकीर्तितम् ।
ज्ञानपीठं तु मुद्राख्यं तद् वायव्यं सुरेश्वरि ॥
परेच्छामुखतो व्योम पीठत्वेनेह नादृतम् ।
तन्मूलस्योपचारस्य बाह्यस्याभावतः प्रिये ॥
चेष्टात्मको भवेद् वायुस्ततः स्यान्नतिरध्वरे ।

1. अभिनवगुप्त ने इसको सर्वाचार शास्त्र का वचन कह कर उद्धृत किया है (पृ० 235) ।

दीपः स्यात् तैजसस्तोयं चरुरिष्टो रसात्मकः ॥
पृथिव्या गन्धवत् पुष्पमुपचाराय पादयोः ।

महार्थमञ्जरीपरिमलधृत चरणसूत्र, पृ० 8-9

18. अनागतायां निद्रायां प्रनष्टे बाह्यगोचरे ।
या भवेन्मनसोऽवस्था भावयेत् तां समाहितः ॥

अद्वयवज्रसंग्रह, पृ० 16

अनागतायां निद्रायां प्रनष्टे बाह्यगोचरे ।
सावस्था मनसा गम्या परा देवी प्रकाशते ॥

विज्ञानभैरव, श्लो० 74

निद्रादौ जागरस्यान्ते यो भाव उपजायते ।
तं भावं भावयन् साक्षादक्षयानन्दमश्नुते ॥

[1]वासिष्ठदर्शन

जागरस्वप्नयोर्मध्यमध्यास्य महतीं दशाम् ।

महार्थमञ्जरीपरिमल, पृ० 190

स्वप्नजागरयोः समं प्रभुः ।

[2]शिवार्कमणिदीपिका मङ्गलाचरण, श्लो० 12

19. अमण्डलप्रविष्टाश्च दृष्टसत्या भवन्ति हि ।

ज्ञानसिद्धि, पृ० 144

अदृष्टमण्डलोऽप्येवं यः कश्चिद् वेत्ति तत्त्वतः ।
स सिद्धिभाग् भवेन्नित्यं स योगी स च दीक्षितः ॥

परात्रिंशिका, श्लो० 18

एवं यो वेत्ति तत्त्वेन तस्य निर्वाणगामिनी ।
दीक्षा भवत्यसंदिग्धा तिलाज्याहुतिवर्जिता ॥

परात्रिंशिका, श्लो० 25

20. (अथ) छोमापटलं व्याख्यास्यामः—
येन विज्ञायते भ्राता भगिनी च न संशयः ॥

---

1. विज्ञानभैरव के टीकाकार शिवोपाध्याय इसको वासिष्ठदर्शन का श्लोक मानते हैं। योगवासिष्ठ में यह उपलब्ध नहीं है। उसके संक्षिप्त संस्करणों में यह खोजा जा सकता है।
2. ब्रह्मसूत्र के श्रीकण्ठ कृत भाष्य की यह अप्पय्यदीक्षित कृत टीका है।

अङ्गुलीं दर्शयेद् यस्तु आगतमित्युक्तं भवेत् ।
द्वाभ्यां सुस्वागतं भवेत् ।
क्षेममुद्रां विजानीयाद् वामाङ्गुष्ठनिपीडनात् ॥
अनामिकां तु यो दद्याद् दद्यात्तस्य कनिष्ठिकाम् ।
मध्यमां दर्शयेद् यस्तु दद्यात्तस्य प्रदेशिकाम् ॥
अनामिकां दर्शयेद् यस्तु ग्रीवां तस्य प्रदर्शयेत् ।
पटं संदर्शयेद् यस्तु त्रिशूलं तस्य दर्शयेत् ॥
स्तनं दर्शयेद् यस्तु सीमां तस्य प्रदर्शयेत् ।
मेदिनीं दर्शयेद् यस्तु चक्रं तस्य प्रदर्शयेत् ॥
भृकुटीं दर्शयेद् यस्तु शिखामोक्षो विधीयते ।
ललाटं दर्शयेद् यस्तु पृष्ठं तस्य प्रदर्शयेत् ॥
पादतलं दर्शयेद् यस्तु क्रीडते कौतुकेन तु ।
मुद्राप्रतिमुद्रणेन भेदयेत् समयेन तु ॥
वदन्ति तत्र योगिन्य अहो पुत्र महाकृप ।
यदि मालाहस्तं दर्शयन्ति तत्र मिलितव्यमिति कथयन्ति ॥
मालाभिप्रेषितां कृत्वा समये तिष्ठ सुव्रत ।
भजेति तत्र मेलायां दिव्यगोचरमाश्रिता ॥
यद्धि वदन्ति योगिन्यस्तत्सर्वं कर्तव्यम् ॥
हेवज्रतन्त्र, 1.7.1-9

शिखां संस्पृशते या तु सा तु शक्ति विनिर्दिशेत् ।
शिरः प्रदर्शयेद् या तु सा च बिन्दुं विनिर्दिशेत् ॥
ललाटं दर्शयेद् या तु ईश्वरं सा विनिर्दिशेत् ।
तालुकं दर्शयेद् या तु तया रुद्रः प्रकीर्तितः ॥
जिह्वां प्रदर्शयेद् या तु विद्यां साथ विनिर्दिशेत् ।
सप्त कोट्यस्तु मन्त्राणां तस्या ज्ञेयास्तु सुव्रते ॥
घण्टिकां दर्शयेद् या तु तयाऽनन्तः प्रदर्शितः ।
कण्ठं तु संस्पृशेद् या सा कालतत्त्वं विनिर्दिशेत् ॥
हृत्पद्मं दर्शयेद् या तु पुरुषं सा विनिर्दिशेत् ।
नाभिं प्रदर्शयेद् या तु प्रकृतिं सा विनिर्दिशेत् ॥

तस्याधस्ताद् बुद्धितत्त्वं यदि स्याद् दर्शनं प्रिये ।
यदा गुह्यं स्पृशेद् देवि अहङ्कारोऽधिदैवतम् ॥
कटिं सन्दर्शयेद् या तु व्योम तत्राधिदैवतम् ।
ऊरुकौ दर्शयेद् देवि पवनं सा विनिर्दिशेत् ॥
जानुनी दर्शयेद् या तु तया तेजः प्रकीर्तितम् ।
जङ्घे प्रदर्शयेद् या तु वरुणं सा विनिर्दिशेत् ॥
शरीरं दर्शयेद् देवि सर्वदेवमयं प्रिये ।...
एवं संक्षेपतः प्रोक्तं मेलकं तु वरानने ।

[1]स्वच्छन्दतन्त्र, 15.24-32,36

21. त्यज धर्ममधर्मं च उभे सत्यानृते त्यज ।
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा येन त्यजसि तत् त्यज ॥

अद्वयवज्रसंग्रह, पृ० 29

त्यज धर्ममधर्मं च उभे सत्यानृते त्यज ।
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा येन त्यजसि तत् त्यज ॥

परात्रिंशिकाव्याख्या, पृ० 161

ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य पश्चाज्ज्ञानं परित्यजेत् ।

तन्त्रवटधानिका, 3.41

22. पञ्चोपचारपूजा

पुष्पं दीपं तथा धूपं गन्धं नैवेद्यमेव च ।
पूजां पञ्चोपहारेण कुर्याद् वै मण्डलस्य हि ॥

चण्डमहारोषणतन्त्र, 2.55-56 पंक्ति

गन्धादिका निवेद्यान्ता पूजा पञ्चोपचारिकी ।

प्रपञ्चसार, 6.44

देहप्रमातृताशान्तिर्येन सिद्ध्यति तं भजे ।
विश्वेन्धनं निजं धूपं ज्ञानपावकसम्भवम् ॥
संविन्मार्गगतो योऽयं प्रयत्नस्त्वात्मसंश्रयः ।
तमेव संश्रये गन्धमानन्दोदयकारणम् ॥
यस्मिन् सर्वमिदं भाति यः सर्वत्रावभासते ।

---

1. यहाँ इस पटल का नाम छुम्मकाप्रकाश दिया गया है । यह ध्यान देने की बात है कि मेला, मेलक, मेलापक आदि शब्द तन्त्रशास्त्र में एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।

कल्पयामि प्रकाशं तं दीपं पूजाविधौ निजे ॥
विश्वं शिवादिभूम्यन्तं चमत्काररसाश्रयम् ।
महीयसे महाभोक्त्रे महेशाय निवेदये ॥

[1]भट्ट गङ्गाधरस्तोत्र

23. ब्रह्मविहार

प्रथमं भावयेन्मैत्रीं द्वितीये करुणां तथा ।
तृतीये भावयेन्मोदमुपेक्षां सर्वशेषतः ॥

हेवज्रतन्त्र, 1.3.1

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ।

पातञ्जल योगसूत्र, 1.33

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनेयेषु ।

तत्त्वार्थसूत्र, 7.11

24. भक्षणं दशार्धामृतम् । हेवज्रतन्त्र, 1.6.4

"दशार्धामृतं पञ्चामृतम्" इति योगरत्नमाला ।

षट्चक्रषडूर्मिषट्कोशाधिष्ठात्रीभिः डरलकसहदेवीभिर्द्वादशार्धदेवताभिः.....।

ऋजुविमर्शिनी, पृ० 182

25. भक्ष्याभक्ष्यविचारं तु पेयापेयं तथैव च ।
गम्यागम्यं तथा मन्त्री विकल्पं नैव कारयेत् ॥

हेवज्रतन्त्र, 1.6.21

खानं पानं यथाप्राप्तं गम्यागम्यं न वर्जयेत् ॥
स्नानं शुचिं न कुर्वीत ग्राम्यधर्मं न वर्जयेत् ॥
मन्त्रं नैव जपेद् धीमान् ध्यानं नैवावलम्बयेत् ।
निद्रात्यागं न कुर्वीत नेन्द्रियाणां निवारणम् ॥
भक्षणीयं बलं सर्वं पञ्चवर्णं समाचरेत् ।
रमते सर्वयोषिता निर्विशङ्केन चेतसा ॥
मित्रस्नेहं न कुर्वीत द्विष्टे द्वेषं तथा न च ।
न वन्दयेदिमान् देवान् काष्ठपाषाणमृण्मयान् ॥

हेवज्रतन्त्र, 2.3.41-44

1. नित्याषोडशिकार्णव की शिवानन्दमुनि कृत ऋजुविमर्शिनी टीका में ये श्लोक उद्धृत हैं (पृ० 134) ।

भक्ष्यं वा यदि वाऽभक्ष्यं सर्वथैव न कल्पयेत् ।
कार्याकार्यं तथा गम्यागम्यं चैव योगवित् ।
न पुण्यं न च वै पापं स्वर्गं मोक्षं न कल्पयेत् ।
सहजानन्दैकमूर्तिस्तु तिष्ठेद् योगी समाहितः ॥

चण्डमहारोषणतन्त्र, 7.18-21 पंक्ति

न पापं विद्यते किञ्चिन्न पुण्यं किञ्चिदस्ति हि ।

चण्डमहारोषणतन्त्र, 8.59 पंक्ति

इच्छामुत्पादयेदात्मा कथं शङ्का विधीयते ।

परात्रिंशिकाव्याख्या, पृ० 236

किञ्चिज्ज्ञैर्या स्मृता शुद्धिः साऽशुद्धिः शम्भुदर्शने ।
न शुचिर्ह्यशुचिस्तस्मान्निर्विकल्पः सुखी भवेत् ॥

विज्ञानभैरव, श्लो० 120

नात्र शुद्धिर्न चाशुद्धिर्न भक्ष्यादिविचारणम् ।
न द्वैतं नापि चाद्वैतं लिङ्गपूजादिकं न च ॥
न चापि तत्परित्यागो निष्परिग्रहतापि वा ।
सपरिग्रहता वापि जटाभस्मादिसंग्रहः ॥
तत्त्यागो न व्रतादीनां चरणाचरणं च यत् ।
क्षेत्रादिसंप्रवेशश्च समयादिप्रपालनम् ॥
परस्वरूपलिङ्गादिनामगोत्रादिकं च यत् ।
नास्मिन् विधीयते किञ्चिन्न चापि प्रतिषिद्ध्यते ॥
विहितं सर्वमेवात्र प्रतिषिद्धमथापि वा ।
किन्त्वेतदत्र देवेशि ! नियमेन विधीयते ॥
तत्त्वे चेतः स्थिरीकार्यं सुप्रयत्नेन योगिना ।
तच्च यस्य यथैव स्यात् स तथैव समाचरेत् ॥
तत्त्वे निश्चलचित्तस्तु भुञ्जानो विषयानपि ।
न संस्पृशेत दोषैः स पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥

मालिनीविजयतन्त्र, 18.74-80

भक्ष्याभक्ष्यविनिर्मुक्तः पेयापेयविवर्जितः ।
गम्यागम्यविनिर्मुक्तो भवेद् योगी समाहितः ॥

ज्ञानसिद्धि, 1.18

26. यत्र यत्र मनो याति ज्ञेयं तत्रैव योजयेत् ।
चलित्वा यास्यते कुत्र सर्वमेव हि तन्मयम् ॥

अद्वयवज्रसंग्रह, पृ॰ 18

यत्र यत्र मनो याति ज्ञेयं तत्रैव चिन्तयेत् ।
चलित्वा यास्यते कुत्र सर्वं शिवमयं यतः ॥

स्वच्छन्दतन्त्र, 4.313

यत्र यत्र मनस्तुष्टिर्मनस्तत्रैव धारयेत् ।
तत्र तत्र परानन्दस्वरूपं संप्रवर्तते ॥

विज्ञानभैरव, श्लो॰ 73

यत्र यत्र मनो याति बाह्ये वाभ्यन्तरे प्रिये ।
तत्र तत्र शिवावस्था व्यापकत्वात् क्व यास्यति ॥

विज्ञानभैरव, श्लो॰ 113

27. यावन्तो ह्यङ्गविक्षेपा वचसः प्रसराणि च ।
तावन्तो मन्त्रमुद्राः स्युः श्रीहेरुकपदे स्थिते ॥

हेवज्रतन्त्र, 1.7.26

ये ये भावा ह्लादिन इह दृश्याः सुभगसुन्दराकृतयः ।
तेषामनुभवकाले स्वस्थितिपरिपोषणं सतामर्चा ॥

[1] प्रशस्तिभूतिपाद

शरीरवृत्तिर्व्रतम् । कथा जपः ।

शिवसूत्र, 3 26-27

28. येनैव विषखण्डेन म्रियन्ते सर्वजन्तवः ।
तेनैव विषतत्त्वज्ञो विषेण स्फोटयेद् विषम् ॥

हेवज्रतन्त्र, 2.2.46

विषापहारिमन्त्रादिसंनद्धो भक्षयन्नपि ।
विषं न मुह्यते तेन तद्वद् योगी महामतिः ॥

मालिनीविजयतन्त्र, 18.81

---

1. तन्त्रालोक के टीकाकार जयरथ ने इस वचन को उद्धृत किया है (3.229) ।

दुर्लभ ग्रन्थों की आधार सामग्री

—ठाकुरसेन नेगी—

[इस शीर्षक से 'धीः' के प्रथम अंक में 28 ग्रन्थों की आधार सामग्री की सूचना दी गई थी, वहीं इस शीर्षक का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया था। तदनुसार 'धीः' के द्वितीय अंक में 14 ग्रन्थों एवं 2 टीकाओं की आधार सामग्री की सूचना दी गई थी। प्रस्तुत अंक में अन्य 28 ग्रन्थों एवं 4 टीकाओं की आधार सामग्री का परिचय दिया जा रहा है। इनमें से कुछ ग्रन्थों के चीनी एवं जापानी अनुवादों की भी सूचना रोमन अक्षरों में दी जा रही है। जिन ग्रन्थों का चीनी एवं जापानी अनुवाद अंकित नहीं है, सूचना मिलने पर उसे आगे के अंकों में प्रकाशित किया जायेगा।]

Title	Author	Institution	Ms. No
अभिसमयमञ्जरी Abhisamaya Mañjarī No. 1582 (Ḥa .25b[1]-44 a[8]) Mṅon-par-rtogs-Paḥi Sñe-ma. A. Dge-baḥi ḥbyuṅ-gnas sbas-pa. T. Dāna Śīla.	Śubhākaragupta	IASWR	MBB-II-243
अमृतप्रभानामसाधनोपायिका Amṛta Prabhānāma Sādhanopāyikā [It is one Very important Text for meditation on Vajra Devi]	Dombī Heruka Pāda.	IASWR PCHVV RAK	MBB-II-165 1 232
अमोघपाशकल्पराज Amogha Pāśa kalparāja No. 686 (Ma. 1 b[1]-316 a[6]) Ḥphags-pa don-yod-Paḥi-shags-paḥi Choga Shib-mohī sgyal-po T. R. chos grags dpal-bzaṅ-po Rin chen grub. [Translated into chinese by Ratanacintā in 639 A. D. There are five chinese Versions. This text was translated into Japanese by		JBORS RAK	XXXI-291 4/1383

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Informations
NP	N	35	Comp.	M. F. CIHTS M. F. Note Book In Prof. J. Upa. Cordier II. P. 63
NP	N	6	Comp.	M. F. CHITS & PROF. J. UPA.
,,	,,		,,	
,,	,,	10-14	,,	
		162	Comp.	Nj No. 317 kanjur kyoto No. 365
	N	44	,,	Nj. No. 363, 312, 316, 315, 314, 313, 997. Taisho No. 901, 1092, 1093, 1094, 1095, 1096, 1097, 1098, 1099

Title	Author	Institution	Ms. No.
Yusei Abe in kik Mikkyobu, Vol. 5. The Sanskrit text was edited by R. O. Meisehahl in Monumenta Nipponica Vol. XVII, 1962 No. 1—4, PP. 265-328.]			
अष्टमीव्रत Aṣṭamī Vrata		RAK	4/1035
		,,	Reel No. E. 378/2
		,,	4/1154
		IASWR	WGS-19
अष्टमीव्रतमाहात्म्य Aṣṭami Vrata māhātmya. [The Eighth day is according to the Buddhists auspicious day to know the Cause of it, This MS. is Very interesting.]		RAK	Reel No. E. 378/3
		,,	,, ,, E. 356/2
		,,	4/341
		IASWR	MBB-II-53
		,,	MBB-I-150
अष्टश्मशान Aṣta Śmaśāna-nāma No. 1212 (Ja. 313b²-314a²) Dur-Khrod brgyad Ces-bya ba. T. Ratna Śrī mitra. Śākya ye-śes No. 1213 (Ja. 314a²-314b¹) Dur khrod brgyad. Ces-bya ba T. above same		JBORS	IV. 4-189 p. 22
कंकीर्णतन्त्रहृदय Kaṅkirṇa Tantra Hṛdaya. [It is a book of mantra used by magicians, the explanation of mantra is Written in Nāgarī & Newari scripts]		IASWR	MBB-I-132
		RAK	Reel No. E. 537/10
		,,	E. 277/60
		,,	4/2448
		,,	4/2160 (ka)
		,,	4/2160 (kha)

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Informations
NP	N	58		
,,	,,	260	Comp.	
,,	,,	20		
NP	N	185	Comp.	A. D. 1825
NP	N	209	Comp.	Hod. Bud. 76.
,,	,,	68	,,	Seems to be a
,,	,,	236	,,	Vernacular Version by Amṛtānanda
,,	,,	63	,,	
,,	,,	35	,,	
		5	Comp.	
NP	N	17	Comp.	M. F. OIHTS
,,	Dev.	22	,,	
,,	N	17	,,	
,,	,,	13	Incomp.	
,,	,,	29	Comp.	Skt. Dhāriṇis Hod. Bud.
,,	,,	34	,,	54. Nepal. II. P. 262.

Title	Author	Institution	Ms. No.
कक्षपुटतन्त्र Kakṣapuṭa Tantra No. 1609 (ya. 72b1-73b6) Mchan-khuṅ-gi sbyor-ba. A. klu-sgrub.	Nāgārjuna	CABATON	No. 19
क्रमसाधन Krama Sādhana	Ārya Nāgārjuna	BAK	4/122
		,,	Reel No. B. 31/10
		,,	3/290
गुर्वाज्ञा Gurvājñā		IASWR	MBB-II-265
		,,	MBB-II-296
		,,	MBB-II-294
		,,	MBB-II-293
[Text on Tāntric Magical Practices.]		,,	MBB-II-291
		,,	MBB-II-284
		,,	MBB-II-283
		,,	MBB-II-282
गुह्यावली Guhyāvalī	Droḍīpāda	BAK	3/1697ka[1]
			Reel No. B. 31/6
चचागीत (चर्यागीत)		BAK	1/1696/45
Cacāgitā (Caryāgita)		,,	1/1696/915
		,,	1/1696/237
		,,	1/1696/1029
		,,	4/1041
		,,	4/1595
		,,	4/1033
		,,	4/1595
		,,	1/1696
		,,	4/2262
		,,	4/1599
		,,	4/1035
		,,	1/1696/1720

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Informations
IP	Dev.	105	Comp.	
PL	Bhujimola	17	Incomp.	
,,		29	Comp.	Photoprint S. S.Uni.
NP	N	41	Incomp.	
NP	N	27	Comp.	M. F. CIHTS
,,	Dev.	18	,,	,, ,,
,,	N	15	,,	,, ,,
,,	,,	44	,,	,, ,,
,,	,,	20	,,	,, ,,
,,	,,	24	,,	,, ,,
,,	Dev.	20		,, ,,
,,	N	20		,, ,,
PL	N	80	Incamp.	
NP	,,	18	Comp.	Photo Print. S. S. Uni. Its Commentary or Vivṛti by Ghanadeva. ms. Cambri. Uni. Bud. pp. 188-190.
	N	अप्राप्य	Comp.	
	,,	,,	,,	
	,,	,,	,,	
	,,	,,	,,	
	,,	,,	,,	
	,,	,,	,,	
	,,	,,	,,	
	,,	,,	,,	
	,,	,,	Damage	
	,,	,,	Comp.	
	,,	,,	,,	
	,,	,,		
	,,	,,		

Title	Authors	Institution	MS. No.
		RAK	Reel No. E. 699/22
		,,	,, E. 701/15
		,,	,, E. 381/6
		,,	,, E. 35/18
		,,	,, E. 35/19
		,,	,, E. 905/3
		,,	,, E. 193/4
		,,	,, E. 193/5
		,,	,, E. 360/4
		,,	,, E. 289/10
		,,	,, H. 130/6
		,,	,, H. 123/11
		,,	,, H. 163/5
		,,	,, E. 597/14
		,,	,, 4/137/4
चर्यागीतसंग्रह Caryāgita Saṁgraha		RAK	4/333
		,,	4/334
		,,	4/1041
		,,	4/1035
		,,	Reel No. H. 394/15
		,,	,, ,, I. 14/15
		,,	,, ,, I. 7/23
		,,	,, ,, E. 300/13
		,,	,, ,, E. 300/15
[It is a big Collection of Tāntric Songs]		IASWR	MBB-II-122
चर्याग्रन्थ Caryā grantha		IASWR	MBB-II-269
चार्यापुस्तक Çaryā Pustaka		IASWR	MBB-I-28

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Informations
	N	52	Comp.	
	,,	26	,,	
	,,	14	,,	
	,,	69	,,	
	,,	35	,,	
	,,	21	Incomp.	
	,,	24	,,	
	,,	28	Comp.	
	,,	74	Incomp.	
	,,	45	,,	
	,,	47	,,	
	,,	31	Comp.	
	,,	20	Incomp.	
	,,	64	Comp.	
	,,			
NP	N	व्यासफू	Comp.	
,,		,,	,,	
,,	,,	,,	,,	
,,	,,	27	,,	Photo Print S.S. Uni.
,,	,,	26	Incomp.	
,,	,,	26	,,	
,,	,,	23	,,	
,,	,,	37	,,	
,,	,,	39	,,	
,,	,,	85	Comp.	Photo Print & M.F CIHTS
NP	N	98	Comp.	Photo Print & M.F. CIHTS
NP	N	36	Comp.	Photo Print & M.F. CIHTS

Title	Author	Institution	Ms. No
चर्याचर्य Caryācarya [This Collection of Dohās Written by different Siddhas with Sanskrit Commentary.]	Luipāda etc.	IASWR	MBB-II-45
चर्याचर्यटीका Caryā Carya Tikā	Luipāda etc.	R K	3/402
		,,	4/324
		,,	1/1633
		IASWR	MBB-II-82
		,,	MBB-II-234
ज्वालावली (वज्रमाला) तन्त्र Jv ālāvali (Vajramālā) Tantra		GOS	13960/30
		CABATON	48
		,,	47
तन्त्राख्यान Tantrākhyāna		IASWR	MBB-II-131
		,,	MBB-II-141
[It has Very intersting fourty six stories with Newari explanations.]			
तारापाराजिका Tārā Pārājikā	Avalokiteśvara	RAK	3/292
		,,	4/2549
			5/7856
[Some Buddhist Social rules]		IASWR	MBB-II-260
पञ्चक्रम Pañcakrama	Nāgārjuna	GOS	13793/52
No. 1802 (Ni. 45a[5]-57a[1])		JBORS	XVII. 1-94
Rim-pa lṅa-pa			
A. Klu-Sgrub		CABATON	65
T. Śraddhākaravarma, Rin-chen bzaṅ-po			
		RAK	4/122

Material	Script	Folio	Comp/Incomp.	Other Informations
NP	Dev.	69	Incomp.	M. F. CIHTS
PL	N	64	Incomp.	Photo Print S.S. Uni.
,,	Bhujimol		,,	
,,	N		,,	
NP	N & Dev.	50	Incomp.	M. F. CIHTS
,,	Dev.	74	,,	,, ,,
IP	N	83		
,,	Dev.	154	Comp,	
,,	N	164	,,	(Burnouf, 130)
NP	N	62	Comp.	M. F. CIHTS
,,	Rañjnā	39	,,	,, ,,
NP	Dev.	12	Comp.	Nepal II. P. 165
,,	N	12	,,	
,,	,,	9	,,	
,,	,,	5	Incomp.	880 A. D.
IP		34		edited by L. de-la Vallée Poussin in Université De Grand 1896.
,,	N	1-13	Comp.	
,,	Dev.	1-34		
PL	N	10	Incomp.	

Title	Author	Institution	Ms. No.
पञ्चक्रमटिप्पणी Pañcakramaṭippaṇī	Parahitarakṣita	GOS CABATON	13794/53 66
पञ्चक्रमविवृत्ति Pañcakrama Vivṛtti	kuloka	JBORS ,,	XVIII. 3-257 XVII. 5-259
मन्त्रसमुच्चय Mantra Samuccaya [Some Collection of Mantras Visualized in dream infront of Mañju śrī; it is mentioned in this text.]	Sumati Śīla Śākya Bhikṣu	IASWR ,,	MBB-I-89 MBB-I-264
मन्त्रोद्धार Mantroddhāra [Key of mantra of Vajradevī's]	Śabara Pāda	IASWR ,,	MBB-II-164 MBB-II-127
मारीचीकल्प Mārīcīkalpa Tantra [The Subject of this text is black art which is very interesting for anthropologists.]		IASWR	MBB-II-112
योगशतक Yogaśataka No. 4306 (He. 1b[1]-8b[1])	Nāgārjuna	RAK	3/382
Sbyor-ba brgya-pa. A. Klu-Sgrub. T. Jetakarṇa, Buddha Śrījñāna, Ñi-ma rgyal-mtshan.		IASWR	MBB-II-262

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Informations
IP		16		Photo Copy Gos. edited by L. de La
,,	Dev.	35-51		Vallée Poussin in Uni. De-Grand 1896
IP	Māgadhī	10	Comp.	
,,	,,	10	,,	
NP	N	30	Comp.	M. F. CIHTS
,,	,,	30	,,	,, ,,
NP	N	5	Incomp.	M. F. CIHTS
,,	Dev.	14	Comp.	,, ,,
N	Dev.	73	Comp.	M. F. CIHTS
PL	N	28	Comp.	edited by J. Filliozat, in Publications De L' Institut Francais D' Indologie, 1979.
NP	Dev.	165	Comp.	Good MS. M.F. CIHTS

Title	Author	Institution	Ms. No.
योगिनीसञ्चारतन्त्र Yoginī Sañcara Tantra No. 375 (Ga. 34a[1]-44b[5]) Rnal-ḥbyor-maḥi kun-tu spyod-pa. T. Hgos Lhas-btsas.		RAK	4/20
योगिनीसञ्चारतन्त्रटीका Yoginī Sañcāra Tantra Tīkā	Panitācārya Alakakalaśa	RAK ,,	3/598 3/683
वसुधाराहृदयमूलतन्त्र Vasudhārā hṛdayamūla Tantra		SMTUL	196-14
वज्रवाराहीयोगराजोत्तम परमरहस्य Vajravārāhī yogarājottama Parama rahasya		RAK ,, ,,	3/666 1/1696 3/1035
वज्रभैरवतन्त्रपञ्जिका Vajrabhairavatantra Pañjikā No. 1973 (Mi. 132b[6]-135b[6]) Rdo-rje ḥjigs-byed-kyi rgyud -kyi dkaḥ-ḥgrel. A. Gshon-nu zla-ba. T. Tathāgatarakṣita, Ba-ri Rin-Chen grags.	Kumāra Candra	JBORS ,,	XXIV-3-276 XXXV. 4-300

Material	Script.	Folio	Comp/Incomp.	Other informations
PL	N	10	Comp.	
PL	N	124	Incomp.	
,,	N	90		
IP	N	161	Comp.	
NP	Dev.	24	Comp.	Photo Print Prof. J. Upa.
,,	N	67	,,	
,,	,,	29	,,	
IP	Māgadhi	4	Comp.	
,,	,	1½	,,	

Title	Author	Institution	Ms. No.
वज्रयोगिनीमन्त्रार्थतत्त्वनिर्देश	Indrabhūti	SMTUL	307-II
Vajra Yoginīmantrārthatattva-			
nirdeśa Svādhiṣṭhāna-nāma.		PCH V	1
No. 1546 (za. 192b[1]-195b[1])			
Dpal rdo-rje rnal-ḥbyor-maḥi			
Sṅags-kyi de-kho-na-ñid-			
Kyis byin-gyis-brlabs-paḥi			
rim-pa shes-bya-ba.			
A. Indra bhūtī			
T. ye-śes rdo-rje.			

Material	Script	Folio	Comp./Incomp,	Other Informations
PL	Siddhānta	9b-15b		
,,	N		Comp.	

नामसंगीति की अध्ययन सामग्रियाँ(२)

—बनारसी लाल—

तन्त्रदेशना

भगवान् बुद्ध ने बुद्धगया में बुद्धत्व प्राप्त करने के अनन्तर ऋषिपत्तन मृगदाव सारनाथ में प्रथम धर्मचक्र का और गृध्रकूट में द्वितीय धर्मचक्र का प्रवर्तन किया। साधारणतया दो ही धर्मचक्र प्रवर्तन स्वीकार किए जाते हैं। प्रथम धर्मचक्र प्रवर्तन हीनयानियों के लिये एवं द्वितीय गृध्रकूट में महायानियों के लिये। इन दो यानों के अतिरिक्त वज्रयान, मन्त्रयान या तन्त्रयान का उल्लेख बौद्ध साहित्य में प्रचुर मात्रा में मिलता है। अतः स्वाभाविक रूप से जिज्ञासा होती है कि वज्रयानियों के लिए उपदेश किस धर्मचक्र प्रवर्तन के अन्तर्गत हुआ ? परम्परागत मान्यतानुसार तन्त्रयान का उपदेश भी भगवान् शाक्यमुनि ने किया। यद्यपि विद्वानों में धर्मचक्र प्रवर्तन के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है, तो भी प्रथम धर्मचक्र प्रवर्तन तो निर्विवाद है। कुछ विद्वान् द्वितीय एवं तृतीय धर्मचक्र प्रवर्तन को एक साथ स्वीकार करते हैं। तथापि तन्त्र ग्रन्थों में इसकी देशना के सम्बन्ध में स्पष्टतया पृथक् स्थान एवं समय स्वीकार किया गया है। तन्त्र ग्रन्थों में इसकी देशना धान्यकटक या श्रीपर्वत, जो दक्षिण भारत में अमरावती के समीप स्थित है, में हुई। धान्यकटक में भगवान् शाक्यसिंह ने विपुल देवगण एवं बोधिसत्त्वों के समक्ष तन्त्रयान का प्रवर्तन किया। नामसंगीति टिप्पणी अमृतकणिका में तन्त्रयान की देशना एवं स्थान के सम्बन्ध में लिखा है कि धान्यकटक में नाना तन्त्रों के श्रवणार्थियों द्वारा अध्येषणा करने पर शाक्यसिंह ने चैत्र पूर्णिमा के दिन धर्मधातु वागीश्वर मण्डल के ऊपर नक्षत्र मण्डल में आदिबुद्ध को विस्फारित कर उसी दिन अभिषेक प्रदान कर देवताओं को बृहत् एवं लघुतन्त्र के भेद से देशना की—"इह खलु श्रीधान्यकटके महाचैत्यस्थाने नानातन्त्रश्रवणार्थिभिरध्येषितः श्रीशाक्यसिंहो नाम बुद्धो भगवान् चैत्रपूर्णिमायां श्रीधर्मधातुवागीश्वरमण्डलं तदुपरि श्रीमान् नक्षत्रमण्डलमादिबुद्धं विस्फार्य तस्मिन्नेव दिने बुद्धाभिषेकं दत्त्वा देवादिभ्यः सर्वमन्त्रनीतिबृहल्लघुतन्त्रभेदेन देशितवान्"। कालचक्रतन्त्र के टीकाकार राजा पुण्डरीक भी अपनी टीका विमलप्रभा में इसी बात को पुष्ट करते हैं। श्रीबृहदादिबुद्ध में भी प्रज्ञापारमिता की देशना एवं मन्त्रनय की देशना को पृथक् बताया है—

गृध्रकूटे यथा शास्त्रं प्रज्ञापारमितानये।
तथा मन्त्रनये प्रोक्ता श्रीधान्ये धर्मदेशना॥ इति[1]।

---

1. सेकोद्देशटीका, पृ॰ 3

आचार्य नडपाद सेकोद्देश की टीका में लिखते हैं—"क्व कस्मिन् मण्डले कुत्र स्थितः कया परिषदा परिवृतो भगवानाह—श्रीधान्ये नियतमन्त्रनयदेशनास्थाने महासुखावासस्थाने वज्रधातुमण्डले वज्रसिंहासने स्थितः"[1] । अतः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि तन्त्रयान की देशना धान्यकटक में चैत्र पूर्णिमा के दिन हुई। प्रायः यह प्रश्न उठता है कि बुद्ध सर्वज्ञ थे और वह दुःखरूपी संसार समुद्र से उद्धार के लिए ही उपदेश करते थे तो उनके उपदेशों में भेद क्यों ? जो महायानियों के लिये बताया वह हीनयानियों को क्यों नहीं और जो तन्त्रयान का उपदेश हुआ वह अन्य दोनों से गुप्त क्यों हुआ ? वस्तुतः यह भेद सत्त्वों के आशय एवं ग्रहणक्षमता के आधार पर हुआ, ऐसा शास्त्रों से विदित होता है; जैसा अद्वयवज्र कहते हैं—

धर्मधातोरसंभेदाद् ध्यानभेदोऽस्ति न प्रभो ।
यानत्रितयमाख्यातं त्वया सत्त्वावतारतः ॥[2]

महायान, श्रावकयान, प्रत्येकबुद्धयान सभी परमार्थ को जानने के लिए सोपानवत् हैं—

आदिकर्मिकसत्त्वस्य परमार्थावतारणे ।
उपायस्त्वयं सम्बुद्धैः सोपानमिव निर्मितः ॥[3]

भगवान् बुद्ध उपायकौशल्य भी थे और नाना सत्त्वों के आशयों को भी जानते थे। इसलिए सद्धर्मपुण्डरीक में कहा है—

उपायकौशल्य ममैव रूपं
यत् त्रीणि यानान्युपदर्शयामि ।
एको हि यानश्च नयश्च एकः
एका चेयं देशना नायकानाम् ॥[4]

जिस प्रकार एक वैद्य रोगी के रोग को जानकर उसके अनुसार उसका निदान करता है, उसी प्रकार बुद्ध का उपदेश भेद भी सत्त्वों के आशय एवं पात्रता के आधार पर माना जाता है। कहा भी है—

वैद्या यथातुरवशात् क्रियाभेदं प्रकुर्वते ।
न तु शास्त्रस्य भेदोऽस्ति दोषभेदात्तु भिद्यते ॥
तथाहं सत्त्वसन्तानं क्लेशदोषैः सुदूषितैः ।
इन्द्रियाणां बलं ज्ञात्वा नयं देशेमि प्राणिनाम् ॥

---

1. सेकोद्देशटीका, पृ० 3
2. अद्वयवज्रसंग्रह, पृ० 22
3. अद्वयवज्रसंग्रह, पृ० 21
4. सद्धर्मपुण्डरीक, 2.69

न क्लेशेन्द्रियभेदेन शासनं भिद्यते मम।
एकमेव भवेद् यानं मार्गमाष्टाङ्गिकं शिवम् ॥

शास्त्रों में यह भी कहा गया है कि बुद्ध के सामने जिस स्तर का पात्र बैठा हो, उसी के अनुसार धर्मोपदेश करते हुए वे दिखाई पड़ते थे। जैसे श्रावक को श्रावकयान का और बोधिसत्त्व को बोधिसत्त्वयान का उपदेश करते हुए प्रतिभास होता है। आचार्य हरिभद्र अपनी आलोक-व्याख्या में कहते हैं—

यथा यथार्थसंपत्तिर्भव्यानामुपपत्स्यते।
तथा तथावभासोऽपि भूयादस्मत्समाश्रयात् ॥

अद्वयवज्र ने तत्त्वरत्नावली में मन्त्रयान और पारमितायान ये दो ही अंग महायान के स्वीकार किये हैं—

महायानं द्विविधं पारमितायानं मन्त्रयानं चेति।[1]

वज्रयान, मन्त्रयान, तन्त्रयान सभी पर्यायवाची शब्द हैं। वज्रयान का उद्भव स्पष्ट ही है, इसका प्रवर्तन शाक्यमुनि ने श्रीधान्यकटक में किया। अतः परम्परानुसार भगवान् बुद्ध ही इसके प्रवर्तक हैं। इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का मत है कि मन्त्रयान का प्रवर्तन भगवान् बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त करने के एक वर्ष पूर्व किया, परन्तु कुछ विद्वान् इसका प्रवर्तन भी अभिसम्बोधि के काल से ही स्वीकार करते हैं। बौद्ध तन्त्रों को मुख्यतया क्रिया, चर्या, योग और अनुत्तरयोग में विभाजित किया गया है। कालान्तर में यह कालचक्रयान और सहजयान के रूप में प्राप्त होता है।

तन्त्र शब्दार्थ

तन्त्र शब्द 'तनु' धातु से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय होकर बना है। तनु धातु का अर्थ है विस्तार—तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेन इति तन्त्रम्'। बौद्ध तन्त्रशास्त्रों में सर्वप्रथम गुह्यसमाज तन्त्र में बताया गया है कि प्रबन्ध ही तन्त्र है और वह प्रबन्ध आधार, प्रकृति और असंहार्य भेद से तीन प्रकार का है—

प्रबन्धं तन्त्रमाख्यातं तत् प्रबन्धं त्रिधा भवेत्।
आधारः प्रकृतिश्चैव असंहार्यप्रभेदतः ॥
प्रकृतिश्चाकृतेर्हेतुरसंहार्यफलं तथा।
आधारस्तदुपायश्च त्रिभिस्तन्त्रार्थसंग्रहः ॥
पञ्चकं त्रिकुलं चैव स्वभावैकशतं कुलम्।
सहोक्तिर्बोधिवज्रस्य सोत्तरं तन्त्रमिष्यते ॥

प्रबन्ध के साथ साथ जो गुह्यरहस्य और अनुत्तर है, वह तन्त्र है—

1. अद्वयवज्रसंग्रह, पृ० 21

तन्त्रं प्रबन्धमाख्यातं संसारं तन्त्रमिष्यते ।
तन्त्रं गुह्यं रहस्याख्यमनुत्तरं तन्त्रमुच्यते ॥
(उद्धृत अमृतकणिका)

तन्त्र का बुद्धवचनत्व

बुद्ध के उपदेशों का जो कालान्तर में संगीतियों में संगायन किया गया, वह पिटकों में निबद्ध है । इन पिटकों में संगृहीत प्रायः सभी सूत्रों के प्रारम्भ में 'एवं मया श्रुतम्.....' इत्यादि वाक्य पाया जाता है । इसमें भी बुद्ध स्वयं साक्षात् नहीं, अपितु संगीतिकार कह रहा है । तन्त्र ग्रन्थों में भी प्रायः सभी में 'एवं मया श्रुतम्.....' इत्यादि पद का प्रयोग हुआ है । आचार्य हरिभद्र अभिसमयालंकारालोक व्याख्या में इस सन्देह का निवारण करते हुए धर्मसंगीतिसूत्र के वचन को उद्धृत करते हैं कि 'एवं मया श्रुतं' से साक्षात् बुद्ध का वचन नहीं है, ऐसी बात नहीं, अपितु बुद्ध स्वयं कहते हैं कि अनागत काल में इसी प्रकार मेरे वचनों का संगायन करें—"भगवति परिनिर्वृते नानार्थाधिमुक्तिप्रभावित्वाद् दुरनुबोधबुद्धत्ववाहकसौगतवचनप्रसरस्य अर्थाधिगमाभावे कथं कैश्चित् संगीतिः क्रियत इति विनेयजनसन्देहापनयनकारिभिस्तथागताधिष्ठानाधिष्ठितैः श्रावकादिभिः 'कथं भगवन् अनागतकाले धर्मः संगातव्यः' इत्यनेन पृष्टेन भगवता कृतविपरीतसाक्षाच्छ्रवणेन अनधिगतार्थेनापि धर्मसंगीतौ क्रियमाणायां न दोष इत्यभिप्रायेणोक्तं धर्मसंगीतिसूत्रे—'एवं मया श्रुतमिति कृत्वा भिक्षवो मम धर्मः संगातव्यः । यथा सम्बन्धानुपूर्वी प्रतिपाद्या' इत्यादि । अतोऽपि वचनाद् देशकालादिवचनम् । तथा 'शक्रो देवानामिन्द्रो भगवन्तमेतदवोचत' इत्यादिवचनं च भगवदनुज्ञयैव संगीतिकर्तृभिः कृतमिति न अबुद्धवचनप्रसङ्गः" ।[1]

कुछ वादियों का मानना है कि किसी भी यान का उपदेश बुद्ध ने नहीं किया । वस्तुतः भेद सत्त्वों में ही है, उनकी पात्रता पर आधृत है । बुद्ध सत्त्वों के आशय को जान लेते थे और जिस तत्त्व का प्रकाशन करना हो श्रोता द्वारा प्रश्नोत्तर के रूप में उपस्थित कर देते थे । प्रज्ञापारमितासूत्रों में पाया जाता है कि बुद्ध के अधिष्ठान से सुभूति प्रज्ञापारमिता का प्रकाशन करते हैं ।

नामसंगीति बौद्धतन्त्र का एक प्रमुख ग्रन्थ है । इसका प्रारम्भ "अथ वज्रधरः श्रीमान्" से होता है । अतः प्रथमतः यह प्रश्न होता है कि इसमें "एवं मया श्रुतम्....." इत्यादि वाक्य नहीं है । दूसरे इसके प्रारम्भ में 'अथ' शब्द है, जो किसी आनन्तर्य का बोधक है । इसकी अन्तिम पुष्पिका में इसे मायाजाल तन्त्र के समाधिजाल पटल का बताया है । सम्भवतः ऐसा वाक्य उक्त मायाजाल तन्त्र के प्रारम्भ में हो, तथापि टीकाकारों ने इसे पृथक् ग्रन्थ माना है और "अथ वज्रधरः श्रीमान्" से ही इसे निसृत करते हैं । यहाँ 'अथ' शब्द का किसी पूर्व प्रकरण के साथ सम्बन्ध नहीं, अपितु वह

---

1. अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, पृ० 270, बौ० सं० ग्र० सं० 4

अकार एवं थकार मात्र ही है। अकार से यहाँ नैरात्म्य एवं सर्वं अकारों से उपेत शून्यता को कहा गया है और थकार से अक्षोभ्य (जिसमें क्षोभ न हो) स्वभाव की प्रतिपादिका निरालम्ब करुणा को बताया गया है। नैरात्म्य, शून्यता एवं करुणा का अद्वैत रूप 'अथ' ही यहाँ 'एवं' का द्योतक है। वज्रधर शून्यता एवं करुणा को अभिन्न महासुख के रूप में धारण करता है, अतः यहाँ 'वज्रधर' ही 'मया' शब्द का द्योतक है। 'श्रीमान्' 'श्रुतम्' का द्योतक है, क्योंकि श्री अर्थात् अद्वय तत्त्व को तादात्म्य रूप में अनुभव करता है, अतः 'श्रीमान्' है। 'अथ वज्रधरः श्रीमान्' ही इसमें 'एवं मया श्रुतम्' का बोधक है। अतः ऐसो किसी भी प्रकार को विप्रतिपत्ति का निराकरण आचार्य रविश्री ने अमृतकणिका में किया है।

उपलब्ध संस्कृत टीका एवं टीकाकार

आर्य मञ्जुश्री नामसंगीति की मूल संस्कृत में तीन टीकाएँ उपलब्ध हैं, इनके टीकाकारों के सम्बन्ध में यद्यपि बहुत अल्प सामग्री उपलब्ध होती है, तथापि उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर तीनों आचार्यों के जीवन, कृतित्व एवं परम्परा के सम्बन्ध में कुछ संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। एवं उपलब्ध संस्कृत पाण्डुलिपियों का विस्तृत विवेचन किया जा रहा है। नामसंगीति पर 26 टीकाओं की सूचना 'धीः' के प्रथम अंक में दी जा चुकी है। तन्त्रसाहित्य के अध्ययन एवं उद्धरणों की सहायता से इस पर अधिक टीका ग्रन्थों के होने की सम्भावना भी है। जैसे आचार्य जगद्दर्पण अपने ग्रन्थ क्रियासमुच्चय में कहते है—"विस्तरत्रासान्नोक्तानि। यदि वा दुष्यते ? तदास्मत्कृत-नामसंगोतिटीकायां योगसारावल्यामवगन्तव्यानि[1]।" अतः योगसारावली नाम की टीका नामसंगीति पर आचार्य जगद्दर्पण ने रची।

आचार्य विलासवज्र

नाममन्त्रार्थावलोकिनी टीका के रचयिता आचार्य विलासवज्र ओडियान[2] निवासी थे और आठवीं शताब्दी के मध्य वर्तमान थे। भोट साहित्य की एक संक्षिप्त जीवनी के अनुसार वह आचार्य कुकुराज (कुक्कुरिपाद) के शिष्य थे। इनका जन्म षंषर (खंखर, सम्भवतः वर्तमान कांगडा) गाँव में हुआ था। ओडियान में इन्होंने प्रव्रज्या ली और तीनों पिटकों के विद्वान् बने। विशेष कर ये विज्ञान-वाद के विद्वान् थे। इन्होंने सभी विद्यास्थानों का अध्ययन किया। मधीपा नामक ओडियान के द्वीप में आर्य मञ्जुश्रीनामसंगोति की साधना की। सिद्धि प्राप्त होने के अन्तिम क्षणों में मञ्जुश्री के चित्र से प्रकाश निःसृत होने लगा, जिससे उस द्वीप में लम्बे समय तक प्रकाश होता रहा। इसी कारण इन्हें

1. शतपिटक सीरीज नं० 237, पृ० 222
2. ओडियान के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। कुछ इसे ओडीविश (उडीसा या बंग) मानते हैं और कुछ इसे उत्तर में स्वात घाटी में स्वीकार करते हैं।

'सूर्यसदृश' भी कहा जाने लगा। किसी दूसरे समय में एक मिथ्यादृष्टि वाले साधक को होम के लिए किसी बौद्ध पण्डित की पांच इन्द्रियों की आवश्यकता पड़ने पर वह आचार्य के पास पहुँचा। उस समय आचार्य ने अपने को अश्व, हाथी आदि विभिन्न रूपों में परिवर्तित कर लिया। इसलिए असली आचार्य को न पाकर वह साधक वापस लौट पड़ा, इस कारण 'विश्वरूप' इस नाम से भी आचार्य प्रसिद्ध हुए। इन्होंने जीवन के उत्तरार्ध में ओडियान में रह कर सत्त्वहितार्थ अनेक कल्याणकारी कार्य किये। बाद में तन्त्र, विशेष कर मायाजाल तन्त्र में विद्वत्ता एवं सिद्धत्व प्राप्त किया। दस वर्षों तक नालन्दा में रह कर तन्त्रशास्त्र का अध्ययन किया। वहीं नामसंगीति पर अनुत्तरयोगतन्त्रानुसार टीका और हेवज्रतन्त्रनिष्पन्नक्रम आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की। इनका प्रव्रजित नाम श्रीमद्वरबोधि[1] (अग्रबोधि) था तथा तन्त्रशास्त्रों में विलासवज्र (sGegs Pahi rDo rJe), सूर्यसदृश, विश्वरूप इत्यादि नामों से विख्यात हुए।

आचार्य कुक्कुरिपाद का समय लगभग 693 ई० माना जाता है। अतः आचार्य विलासवज्र का समय 8वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में स्वीकार किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में कुछ अन्य सूचनाएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। लामा तारानाथ ने आचार्य को डोम्बीहेरुक के समकालीन स्वीकार किया है[2]। बुस्तोन (Bu sTon) के अनुसार मञ्जुश्रीमित्र विलासवज्र के गुरु थे। जो महा अनुवादक मा रिन् छेन छोग (sMa Rin Chen Chog) के समकालीन थे। मा रिन् छेन छोग प्रव्रजित होकर 779 ई० में भारत पहुँचे थे[3]। आचार्य बुद्धश्रीज्ञान के द्विक्रमतत्त्वोपदेश[4] के अनुसार भी आचार्य ओडियान देशवासी थे।

रचनाएँ

तन्ग्युर संग्रह में आचार्य के नाम से निम्नलिखित 6 ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं—

1. महातिलकक्रमनाम। (तोह० 1290)
2. श्रीगुह्यसमाजतन्त्रनिदान गुरूपदेशव्याख्यान। (तोह० 1910)
3. आर्यनामसंगीतिटीकानाम नाममन्त्रार्थावलोकिनीनाम। (तोह० 2533)
4. श्रीयमान्तकवज्रप्रभेदनाम मूलमन्त्रार्थ (तोह० 2014)
5. sPyihi Dam Tshig mDor bsDus pa. (सामान्यसमयसंग्रह) (तोह० 3723)
6. शीलसंवरसमयाविरोधनाम। (तोह० 3724)

---

1. श्रीमद् वरबोधि के नाम से नामसंगीति पर तीन ग्रन्थ हैं—देखे 'धीः' प्रथम अंक, पृ० 226, 227, 229
2. बौद्ध धर्म का इतिहास, पृ० 6
3. The Litany of Names of Mañjuśri Nāmasaṁgiti, Intro p. 6
4. तोह० न० 1853

इसके अतिरिक्त भी आचार्य के नाम से एक लघुपुस्तक 'संक्षिप्त वज्रवाराहीसाधन' संस्कृत में प्राप्त है[1]। नेपाल के चर्यासंग्रहों में भी आचार्य के कुछ चर्यापद प्राप्त होते हैं एवं उपर्युक्त भोट जीवनी के अनुसार भी हेवज्रनिष्पन्नक्रम पर आचार्य की अवश्य कोई कृति है।

आचार्य की टीका नाममन्त्रार्थावलोकिनी नामसंगीति की प्राचीन टीकाओं में से एक है। आचार्य ने इस टीका को नालन्दा में रह कर अनुत्तर योगतन्त्र की परम्परा में रचा है। इन्होंने सूत्र, अभिधर्म, विज्ञानवाद और माध्यमिक सभी प्रस्थानों के ग्रन्थों से उद्धरण दिये हैं। आचार्य स्वयं इन सभी विषयों में निष्णात थे, जिसे उन्होंने मंगलाचरण में भी इंगित किया है—

ॐ नमो मञ्जुघोषस्वामिने

आर्यमञ्जुश्रियं नत्वा ज्ञानेन्दुं त्र्यध्वतायिनम्।
तथास्मिन् नामसंगीतिं गम्भीरोदारधर्मिणीम्॥
योगस्यार्थे क्रियातन्त्रं तथा पारमितानये।
सूत्राभिधर्मपिटकं विलोक्यान्यनिबन्धनम्॥
जातिकं चेतिवृत्तं च स्तोत्रकारमतं तथा।
विज्ञानवादमखिलं तथा मध्यमकं च यत्॥
लौकिकं च तथा शास्त्रं गुरुपर्वक्रमागतम्।
उपदेशं च संस्मृत्य प्रार्थितेन मयाऽधुना॥
व्याख्यानं क्रियते तस्या गम्भीरोदारवर्तनम्।
सत्त्वानां मन्दबुद्धीनां करुणार्द्रेण चेतसा॥

इस टीका की पुष्पिकाओं के अन्त में अधिकार शब्द का प्रयोग किया गया है, जैसे—

1. आर्यनामसंगोतिटीकायां नाममन्त्रार्थावलोकिन्याम् अध्येषणायाः प्रथमोऽधिकारः। गाथा षोडश।
2. ····प्रतिवचनाधिकारो द्वितीयः। गाथा षट्।
3. ····षट्कुलावलोकनाधिकारस्तृतीयः। गाथा द्वे। इत्यादि।

इस टीका की सात विभिन्न पाण्डुलिपियों की सूचना 'धीः' प्रथम अंक में दी जा चुकी है, (धीः I, पृ० 233)। इनमें दो पाण्डुलिपियां नेपाल के व्यक्तिगत संग्रहों में हैं, जिनका माईक्रो-फिल्म नेपाल जर्मन मैनुस्क्रिप्ट प्रिजर्वेशन द्वारा किया गया है एवं माइक्रोफिल्म राष्ट्रीय अभिलेखालय काठमाण्डू में संरक्षित है, तदनुसार निम्नलिखित सूचना दी जा रही है—

---

1. 'धीः' प्रथम अंक, पृ० 22

क-माईक्रोफिल्म रील संख्या ई० 370.17, पाण्डुलिपि काठमाण्डू निवासी पी० आर० वज्राचार्य के संग्रह में उपलब्ध है।

पत्र सं०—80
आकार—20.5 × 10.5 से० मी०
लिपि —देवनागरी
आधार—नेपाली कागज
संवत् —920 (ने० सं०)

ख-माईक्रोफिल्म रील सं० ई० 360.16, काठमाण्डू (व्यक्ति का नाम निर्दिष्ट नहीं है)

पत्र सं०—85
लिपि —नेवारी
आधार—कागज

आचार्य रविश्रीज्ञान

आचार्य रविश्रीज्ञान की नामसंगीति पर अमृतकणिका टिप्पणी अत्यन्त प्रौढ़ रचना है। इसके अतिरिक्त उनकी दो अन्य टीकाएँ षडङ्गयोग पर हैं। इन रचनाओं को देखने से ज्ञात होता है कि वे कालचक्रतन्त्र परम्परा के एक प्रसिद्ध आचार्य थे। यद्यपि आचार्य रविश्रीज्ञान के जीवन के सम्बन्ध में विस्तृत सूचना उपलब्ध नहीं होती, तथापि उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि वे बारहवीं या तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में वर्तमान थे। वे शुभाकर गुप्त, शाक्यश्रीभद्र (1127-1225 ई०) एवं धर्माकरशान्ति के समकालीन थे। ये सभी आचार्य अभयाकर गुप्त के अनुयायी थे। अभयाकर गुप्त को बुद्धशासन का संरक्षण करने वाले प्रसिद्ध आचार्यों में अन्तिम माना जाता है[1]। आचार्य अभयाकर गुप्त (1084-1103 ई०) का समय ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध एवं 12 वीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है। ये विक्रमशील विहार में एक महान आचार्य थे[2]।

अमृतकणिका नामसंगीति टिप्पणी में आचार्य अपने को शबरपा की परम्परा से जोड़ते हुए नमस्कार करते हैं—

विषयविषयी व्योमाश्लेषप्रवृत्त(त्ति)निमित्तक:(कं)
रविशशितमोवर्त्मावृत्त्या शरारिचलक्रियम्।
स्फुरदुरुतरज्ञानज्योतिः श्रुतिशबराधिपं
मणिमयशिलारूढं गूढं नमामि निरापदम्॥

1. बौद्धधर्म का इतिहास—लामा तारानाथ, पृ० 132
2. निष्पन्नयोगावली, गा० ओ० सी० न० 109, भूमिका पृ० 10-11

शबरीपा (657 ई०) प्रसिद्ध 84 सिद्धों में एक थे। सिद्ध शबरीपा की परम्परा में लुइपा (669 ई०), दारिकपा, (753 ई०) सहजयोगिनी चिन्ता (765 ई०) एवं डोम्बीहेरुक (777 ई०) आदि प्रमुख हैं।

आचार्य अनुपमरक्षित ने जो नारोपा (990 ई०) के समकालीन थे, कालचक्रानुसारी षडङ्गयोग पर ग्रन्थ लिखा है। इस पर आचार्य रविश्री ने भी षडङ्गयोगटीका एवं गुणपूर्णी नामक टिप्पणी लिखी है। यद्यपि षडङ्ग योगपरम्परा काफी पुरानी है, तन्ग्युर संग्रह में षडङ्गयोग पर बहुत से ग्रन्थ उपलब्ध हैं। ब्ल्यू एनाल्स के अनुसार षडङ्ग योग परम्परा में निम्नलिखित आचार्य हुए हैं—अवलोकितेश्वर, अनुपमरक्षित, श्रीधरानन्द, भास्करदेव, रविश्रीज्ञान, धर्माकरशान्ति, रत्नरक्षित, नरेन्द्रबोधि, मुक्तिपक्ष, शाक्यरक्षित, सुजात, बुद्धघोष एवं धर्मस्वामी[1]।

कुछ लोग रविश्री को धर्माकरशान्ति का शिष्य मानते हैं, परन्तु शुभाकर गुप्त के अनुसार रविश्रीज्ञान के शिष्य धर्माकरशान्ति थे[2]। विभूतिचन्द्र अपने अमृतकणिकोद्योत में भी अमृतकणिका के पदों की व्याख्या करते हुए कहते हैं—"लक्षतिलकगोत्रगोपालभूपतिगुरोः पण्डितचक्रमणेः धर्माकरशान्तिचरणादधिगतं ज्ञानं तत् टिप्यते"। अतः ज्ञात होता है कि धर्माकरशान्ति रविश्री के गुरु थे।

आचार्य की निम्नलिखित तीन ही रचनाओं की सूचना तन्ग्युर संग्रह में उपलब्ध होती है—

1. षडङ्गयोगटीका। (तोह० 1368)
2. गुणपूर्णीनाम षडङ्गयोगटिप्पणी। (तोह० 1388)
3. अमृतकणिका आर्यनामसंगीतिटिप्पणी। (तोह० 1395)

आचार्य रविश्रीज्ञान कालचक्र के एक महान् आचार्य थे। नामसंगीति पर आचार्य की इस टीका में भी कालचक्रतन्त्रटीका विमलप्रभा को प्रचुर मात्रा में उद्धृत किया है। कालचक्रतन्त्र एवं नामसंगीति दोनों प्रमुख तन्त्र हैं। विमलप्रभाटीकाकार भी स्थान-स्थान पर नामसंगीति को उद्धृत करते हैं और नामसंगीति को साक्षी मानकर कालचक्र के पदों की व्याख्या करते हैं। सेकोद्देशटीका में भी नारोपा ने पुनः पुनः नामसंगीति के श्लोकों को उद्धृत किया है। आचार्य रविश्रीज्ञान के समक्ष सेकोद्देशटीका अवश्य थी, क्योंकि उन्होंने बिना नाम उद्धृत किए ही नामसंगीति पदों की व्याख्या प्रसंग में सेकोद्देश टीका के प्रसंगों का भरपूर उपयोग किया है, विशेष कर षडङ्ग योग के प्रसंग में। नामसंगीति के पदों की व्याख्या के प्रसंग में आचार्य ने कालचक्र तन्त्र ही

1. Blue Annals, page–800
2. Blue Annals, p. 764

नहीं, अपितु हेवज्रतन्त्र, गुह्यसमाज, मूलतन्त्र, सर्वरहस्यतन्त्र आदि अनेक मूल ग्रन्थों एवं नागार्जुन, आर्यदेव, सरहपाद, कृष्णपाद आदि अनेकों आचार्यों के श्लोकों को भी उद्धृत किया है।

टीका के प्रारम्भ में ही आचार्य रविश्री अपने आदि गुरु को नमस्कार करते हैं—

विषयविषयि.........................श्रुतिशबराधिपं
मणिमयशिलारूढं गूढं नमामि निरापदम् ॥

विभूतिचन्द्र अपने उद्योत में अमृतकणिका के सम्बन्ध में लिखते हैं कि यह कालचक्र एवं हेवज्र आदि तन्त्रों के रहस्यों एवं श्रीसरह, शबर, कृष्णपाद आदि आचार्यों के उपदेश के आधार पर आचार्य रविश्री ने रची—

श्रीनारोपादपञ्जिका.........श्रीकालचक्रहेवज्रादितन्त्ररहस्यान्विता।
श्रीशबरसरहकृष्णपादाद्युपदेशश्रिता रविश्रियः............................ ॥

इस टीका में परिच्छेदों के अन्त में आई पुष्पिकाओं तथा तत्तत् परिच्छेदों के विषयों का भी संक्षेप में निर्देश होता है। जैसे—

1. अवधूत्याश्रितषोडशानन्दविशुद्ध्या षोडशगाथाभिरध्येषितत्वादध्येषणा गाथा षोडश।
2. उष्णीषादिषट्चक्रनाडीमध्यवरटकाकाशसुखानुभवप्रकाशकषड्गाथाभिः प्रतिवचनम्।
3. षट्कुलानि संवृतिपरमार्थसत्यविशुद्ध्या गाथाद्वयेन षट्चक्रेषु अद्वयज्ञानत्वेन प्रतिपादितानीति षट्कुलावलोकनगाथाद्वयम्।
4. कायवाक्चित्त एव रूपमहायोगसंग्राहकगाथात्रयेण पूर्वोक्तमायाजालाभिसम्बोधिक्रमसूचनात् तथोक्तम्।
5. इति श्रीवज्रसत्त्वद्वारेण उष्णीषललाटकण्ठहृन्नाभिगुह्यमणिशिखरगत्यागतिसूचकचतुर्दशगाथाभिर्बोधिचित्तवज्रस्य प्रतिपादनं कृतम्।
6. पादोनपञ्चविंशतिश्लोक्या सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानस्य लोकोत्तरविज्ञानस्कन्धाक्षोभ्यस्वभावेन व्याख्या दर्शिता।
7. हृद्गतप्राणचतुष्टकनिरावरणताप्रतिपादकसपाददशश्लोक्या आदर्शज्ञानस्य लोकोत्तरसत्यरूपस्कन्धवैरोचनमुखेन व्याख्या।
8. इति उष्णीषादिमणिशिखरान्तस्थानसप्तकेषु निरावरणीकृतषट्स्कन्धधात्विन्द्रियविषयकर्मेन्द्रियक्रियाषट्कविशुद्ध्या द्वाचत्वारिंशत्श्लोक्या प्रत्यवेक्षणाज्ञानव्याख्या।
9. इति द्वादशाङ्गनिरोधद्वादशभूमिप्रतिलम्भविशुद्ध्या समताज्ञानगाथाश्चतुर्विंशतिः।
10. निरावरणपञ्चदशकलाविशुद्ध्या सर्वतथागतसमधिगतकार्यकारणलक्षणकृत्यानुष्ठानज्ञानगाथाव्याख्या।

शेष परिच्छेदों की कोई विशिष्ट पुष्पिका नहीं दी गयी है। अन्त में इसकी समाप्ति-पुष्पिका इस प्रकार है—अमृतकणिकानामश्रीनामसंगीतिटिप्पणी समाप्ता। कृतिराचार्यरविश्रीभिक्षुनेति।

'धीः' प्रथम अंक (पृ० 233-234) में उक्त टीका की पांच पाण्डुलिपियों की सूचना दी गई है, उनमें मेरे देखने में आयी तीन पाण्डुलिपियों का परिचय निम्न प्रकार से है—

क— अमृतकणिका नामसंगीतिटिप्पणी

लगत संख्या—4.20	पत्र संख्या—100
आधार—ताड़ पत्र	लिपि—नेवारी
आकार—31 × 4.5 से० मी०	पूर्ण।

यह पाण्डुलिपि राष्ट्रीय अभिलेखालय काठमाण्डू में उपलब्ध है। नेपाल जर्मन मैनुस्क्रिप्ट प्रिजर्वेशन प्रोजेक्ट द्वारा इसका माईक्रोफिल्म करवाया गया है, जिसकी रील संख्या बी० 24.30 है।

ख—अमृतकणिका नामसंगीतिटिप्पणी

लगत संख्या—5.169	पत्र सं०—48
आधार —नेपाली कागज	लिपि—देवनागरी
आकार —$12\frac{1}{2}$ × 5 से० मी०	पूर्ण

यह पाण्डुलिपि भी राष्ट्रीय अभिलेखालय काठमाण्डू में उपलब्ध है। माईक्रोफिल्म में इसकी रील संख्या—बी० 103.14 है।

ग—अमृतकणिका नामसंगीतिटिप्पणी

यह ताडपत्रीय पाण्डुलिपि केसर पुस्तकालय काठमाण्डू में सुरक्षित है। नेपाल जर्मन मैनुस्क्रिप्ट प्रिजर्वेशन प्रोजेक्ट द्वारा इसका माइक्रोफिल्म बनाया गया है, जिसकी रील संख्या सी० 14.10, पत्र संख्या 70 है। यद्यपि यह किञ्चित् त्रुटित है, तथापि पूर्ण है।

उपर्युक्त तीनों प्रतियों में 'क' प्रति ही प्राचीन जान पड़ती है। 'ख' प्रति स्पष्टतया 'क' प्रति से प्रतिलिपि की गई है। 'क' प्रति में पाण्डुलिपि का लेखन काल नेपाली संवत् 600 दिया गया है, अर्थात् यह प्रति 15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिखी गयी है। इसके लिपिकार वज्राचार्यकुलोत्पन्न रूपराज हैं, जो मणिसंघ नामक विहारवासी थे। "अब्दे व्योमवियत्षडाननयुते कृष्णे सचैत्रे फाल्गुने षष्ठम्यामनुराधके गुरुदिने शुद्धिश्च योगे इमे। बुद्धैर्भाषितधर्मसारनिचयं श्रीनामसंगीतिकं सत्त्वानां हितहेतवे विलिखितं श्रीरूपराजेन च॥ यस्मिन् श्रीमणिसंघनाम्नि च महावैहारसंस्थिते श्रीमन्वज्रविलासिनीं भगवतीं पादारविन्दार्चितम्। वज्राचार्यकुलोद्भूतसगुणवान् धर्मज्ञशास्त्रागमं। शास्ता श्रीरविचन्द्रपादप्रभवात् ख्यातो महीमण्डले॥"

आचार्य विभूतिचन्द्र

आचार्य विभूतिचन्द्र के यद्यपि पाँच छह ही मौलिक ग्रन्थों की सूचना है, तथापि आचार्य ने सैकड़ों संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद भोट भाषा में किया, जिसकी सूचना तन्युर संग्रह में मिलती है। आचार्य विभूतिचन्द्र 13 वीं शताब्दी में विद्यमान थे और जगद्दल विहार (जगत्तला, बंगाल) के आचार्य थे।[1] आचार्य की एक संक्षिप्त जीवनी भोट साहित्य में उपलब्ध होती है[2]। तदनुसार वे शाक्यश्रीभद्र (1129-1225 ई०) के साथ गये 9 पण्डितों में एक थे। व्याकरण और अभिधर्म के विद्वान् थे, उन्होंने शबरीपा की परम्परा से षडङ्ग योग प्राप्त किया था। वहां पर ड्री खुङ् जिगतेन गोनपो से उनका शास्त्रार्थ हुआ। जब शास्त्रार्थ में वह पराजित हो रहे थे तो उन्होंने महामुद्रावादी ड्री खुङ् के मत की निन्दा की। इस पर ड्री खुङ् के शिष्य अत्यधिक क्रोधित हुए और आचार्य के चीवर नोंच डाले। इससे खिन्न होकर आचार्य ने सात दिनों तक तारा की साधना की। सात दिनों तक लगातार पूजा करने के बाद भी देवी के सन्तुष्ट न होने पर इसका कारण पूछा। तब देवी ने उन्हें प्रायश्चित्त करने एवं प्रायश्चित्त स्वरूप किसी देवता का मन्दिर बनवाने का आदेश दिया। इसके अनन्तर आचार्य ने ड्री खुङ् के पास जाकर प्रायश्चित्त किया। बाद में स्रिङ्मो पर्वत पर चक्र-संवर का एक मन्दिर बनवाया और वहाँ महापण्डित (ड्री खुङ्) के काय के बराबर चक्रसंवर की मूर्ति स्थापित की, जिसके बारे में यह प्रसिद्धि है कि यह आकाश के मध्य में स्थापित है। ये तिब्बत में अनेकों वर्ष रहे और त्रिसंवरमाला ग्रन्थ की रचना की तथा अनेकों संस्कृत ग्रन्थों का भोटानुवाद किया।

यद्यपि इस संक्षिप्त जीवन परिचय में आचार्य के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं है, तथापि अन्य सूचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि आचार्य जगद्दल महाविहार के प्रसिद्ध आचार्यों में एक थे। इस महाविहार की स्थापना पालवंश के अन्तिम राजा रामपाल ने की थी। राजा ने इसमें अवलोकितेश्वर एवं तारा की मूर्तियों की स्थापना की। आचार्य विभूतिचन्द्र एवं दानशील इस विहार के प्रसिद्ध आचार्य थे और मोक्षाकर गुप्त यहाँ के प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक हुए[3]।

विक्रमशील विहार के आचार्य अभयाकर गुप्त के एक शताब्दी पश्चात् भारतवर्ष में बौद्ध धर्म समाप्त हो रहा था। विक्रमशील विश्वविद्यालय को तुर्कों ने जला डाला था। इस समय शाक्य-श्रीभद्र (1127-1225 ई०) के साथ 1203 ई० में दानशील एवं संघश्री आदि बौद्ध पण्डितों के साथ आचार्य भी नेपाल होते हुए तिब्बत पहुंचे[4] और वहाँ बौद्ध परम्परा की सुरक्षा की। ब्ल्यु

---

1. भक्तिमार्गी बौद्ध धर्म—नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, पृ० 11
2. Biographical Dictionary of Tibet and Tibetan Bueddhism–p 867.
3. Obscure Religious Cult–S. Das gupta, p–13.
4. पुरातत्त्व निबन्धावली–पृ० 218

एवाल्स के अनुसार को ङ्ग सोद्नम् ग्यल् छन् (1182-1262 ई०) ने आचार्य को नेपाल से तिब्बत के दिङ्री नामक स्थान में बुलाया और आचार्य से षडङ्गयोग का अध्ययन किया, जिसे आचार्य ने शबरीपा की परम्परा से प्राप्त किया था[1]। तिब्बत में वे वुस्तोन (Bu-sTon) रिन्पोछे (1290-1364 ई०) से भी मिले। वुस्तोन रिन्पोछे ने उनसे सद्धर्म के उपदेश की प्रार्थना की।[2]

विभूतिचन्द्र कालचक्र तन्त्र परम्परावादी आचार्य थे, इस परम्परा में इनकी मुख्य कृति 'अन्तर्मञ्जरी' है। ये अपने उद्योत में अपनी परम्परा का भी किञ्चित् संकेत देते हैं—'श्रीनारोपाद-पञ्जिका साध्वी श्रीकालचक्रहेवज्रादितन्त्ररहस्यान्विता श्रीशबरसरहकृष्णपादाद्युपदेशाश्रितरवि-श्रियः..........।'

भोटानुवाद तन्ग्युर संग्रह में इनकी निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध होती हैं—

1. अन्तर्मञ्जरी। (तोह०—1377)
2. पिण्डीकृतसाधनपञ्जिका। (तोह०—1832)
3. त्रिसंवरप्रभामालानाम। (तोह—3737)
4. बोधिचर्यावतारतात्पर्यपञ्जिका विशेषद्योतनीनाम। (तोह०—3880)

यद्यपि तन्ग्युर संग्रह में उक्त चार ही ग्रन्थ आचार्य के नाम से उद्धृत हैं, तथापि अन्य कृतियाँ भी आचार्य के नाम से उपलब्ध होती हैं—

5. अमृतकणिकोद्योतनिबन्ध[3]।
6. श्रीवज्रविलासिनीस्तोत्र[4]।
7. ज्योतिषवैद्यकक्रोडपत्र[5]।

आचार्य रविश्रीज्ञान की नामसंगीतिटिप्पणी अमृतकणिका पर आचार्य विभूतिचन्द्र की यह उद्योत टीका है। इस टीका की तीन उपलब्ध संस्कृत पाण्डुलिपियों का विवरण 'धीः' प्रथम अंक में दिया जा चुका है। उनमें से दो पाण्डुलिपियों की फोटो प्रति मुझे प्राप्त हुई। परन्तु लिपि की दुरूहता के कारण अभी इसका किसी प्रकार का अध्ययन कर पाने में असमर्थ रहा। द इंस्टीच्यूट फार एडवांस स्टडीज आफ वर्ल्ड रिलिजन की प्रकाशित सूची के अनुसार पाण्डुलिपि का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

---

1. Blue Annals–p. 727.
2. Mystic Tales of Lama Taranath—B. N. Datta, p. 38.

3-4. 'धीः' प्रथम अंक, पृ० 4,234.

5. Journal of Bihar and Orissa Research Society, VOl–XXIII, Part–I, 5-310, पत्र 12, लिपि मागधी।

(क) अमृतकणिकोद्योत

एम० बी० बी० 1—22 समय—1743 ई०

पत्र संख्या 55 आधार—नेपाली कागज

(ख) दूसरी प्रति राष्ट्रीय अभिलेखालय काठमाण्डू की है। तदनुसार संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

लगत सं०— 3।655 पत्र सं०—95

आकार— $12\frac{1}{2} \times 5$ सें० मी०, लिपि—देवनागरी

आधार—नेपाली कागज, पूर्ण

ग्रन्थ के प्रारम्भ में शबरपाद और रविश्री दोनों को नमस्कार किया है—

गुरुवरशबरं शिरसावस्थितचरणं रविश्रियं नत्वा।
तदमृतकणिकोद्योतं विभूतिचन्द्रो निबध्नाति ॥

इसमें सभी पुष्पिकाएँ संक्षेप में दी गई हैं, जैसे—अध्येषणा, प्रतिवचन इत्यादि। ग्रन्थ की समाप्ति में इसे अमृतकणिकोद्योत'निवर्थः' कहा गया है, सम्भवतः यह 'निबन्ध' होना चाहिए। इसमें आचार्य ने अनेक बौद्ध तन्त्र ग्रन्थों के साथ-साथ महायान शास्त्रों, हिन्दू ग्रन्थों एवं सिद्धों के दोहा पदों को प्रमाण रूप में स्थल स्थल पर उद्धृत किया है।

उपर्युक्त टीका की एक अन्य प्रति तोक्यो विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में भी उपलब्ध है[1]। मात्सुनामी सूची के अनुसार उक्त पाण्डुलिपि का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

अमृतकणिकोद्योत
आधार—तालपत्र
पत्र सं०—90
पंक्ति—6
पत्र, 1.2.3.4.88.89, त्रुटित।

नामसंगीति की पाण्डुलिपियाँ

आर्यमञ्जुश्री नामसंगीति की शताधिक पाण्डुलिपियाँ ताड़पत्र एवं नेपाली पत्रों पर विश्व के विभिन्न पुस्तकालयों में उपलब्ध हैं एवं नेपाल में व्यक्तिगत संग्रहों में भी काफी संख्या में उक्त ग्रन्थ

1. A Catalogue of Sanskrit Mss in Tokyo University library—S. Matsunami, 1965.

की पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं। यद्यपि इन सभी की सूचना देना यहाँ सम्भव नहीं है, तथापि उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर यथासंभव पाण्डुलिपियों की सूचना अंकित की जा रही है।

सी० बैन्डल की सूची के अनुसार कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय[1] के पुस्तकालय में नामसंगीति की निम्न पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं—

(1)	पृ० 29	ए० डी० डी०	1104	नामसंगीति	25 पत्र
(2)	पृ० 47	,, ,,	1323	नामसंगीति	40 पत्र
(3)	पृ० 52	,, ,,	1332	नामसंगीति	
(4)	पृ० 77	,, ,,	1372	नामसंगीति	
(5)	पृ० 126	,, ,,	1548	नामसंगीति	23 पत्र
(6)	पृ० 206	,, ,,	1708	नामसंगीति	2 पत्र
(7)	पृ० 62	,, ,,	1347	परमार्थनामसंगीति	63–4 पत्र

इंस्टीच्यूट आफ एडवांस स्टडीज आफ वर्ल्ड रिलिजन नामक न्यूयार्क[2] की संस्था में उनके सूचीपत्र के अनुसार नामसंगीति की निम्नलिखित पाण्डुलिपियाँ माईक्रोफिश के रूप में उपलब्ध हैं—

(1) एम० बी० बी०–1–102	नामसंगीति	ताड़पत्र	11 पत्र
(2) एम० बी० बी०–2–170	नामसंगीति	नेपाली कागज	64 पत्र

नेपाल रिसर्च सेण्टर (नेपाल जर्मन मैनुस्क्रिप्ट प्रिजर्वेशन प्रोजेक्ट) के द्वारा जुलाई 1983 तक नेपाल के विभिन्न पण्डितों एवं बिहारों के संग्रहों में उपलब्ध नामसंगीति की पाण्डुलिपियों का माईक्रोफिल्म तैयार किया गया है। कैटलाग के अनुसार प्राप्त पाण्डुलिपियों की सूचना निम्नलिखित प्रकार से है[3]—

(1) मञ्जुश्रीनामसंगीति	संस्कृत/नवीन
ताड़पत्र–75, अपूर्ण	व्यक्तिगत/काठमाण्डू
आकार 23.2 × 10.3 से.मी.	नं० 799
लिपि–नेवारी	रील नं० डी० 35।31
किञ्चित् त्रुटित	

1. Catalogue of Buddhist sanskrit Manuscripts.
2. Microfishe cat. of Buddhist Sanskrit Ms. IASWR.
3. संकलित माइक्रोफिल्म राष्ट्रीय अभिलेखालय काठमाण्डू एवं नेपाल रिसर्च सेन्टर भानेश्वर में उपलब्ध हैं।

(2) मञ्जुश्रीनामसंगीति	व्य० । संग
उद्धलामा	नं० 13142
ताड़पत्र–९, अपूर्ण	रील नं० इ० 597।23
आकार–22.3 × 8 से.मी.	
लिपि–नेवारी	
(3) परमार्थनामसंगीति	संस्कृत
एम० एम० मिरी	व्य० । पाटन (ललितपुर)
पत्र–18, पूर्ण	नं० 5147
आकार 24 × 15.7 से.मी.	रील नं० एच० 316।12
लिपि–नेवारी	
नेपाली कागज	
(4) परमार्थनामसंगीति	संस्कृत
के० महर्जन	व्य० । बुगमती
पत्र–48, पूर्ण	एच० 5013
आकार–23 × 8.3 से.मी.	रील सं० एच० 307।8
लिपि–नेवारी	
नेपाल सम्बत् 973	
(5) परमार्थनामसंगीति	संस्कृत-नवीन
तेजबहादुर	व्य० । काठमाण्डू
पत्र–55, अपूर्ण	ई० 619
आकार–28.3 × 8.1 से.मी.	रील नं० ई० 69।2
लिपि–नेवारी	नेपाली कागज
पत्र 1,52 अनुपलब्ध	
(6) परमार्थनामसंगीति	संस्कृत । नवीन
पत्र–43, पूर्ण	व्य० । काठमाण्डू
आकार–22.5 × 10 से.मी.	रील सं० ई० 5।5
लिपि–देवनागरी	कागज

(7) परमार्थनामसंगीति
पत्र–42, अपूर्ण
आकार–27.5 × 21.2 से.मी.
लिपि–देवनागरी
नेपाली सम्बत् 1012

संस्कृत-नवीन
व्य० । काठमाण्डू
डी०–1354
रील० सं० डी० 75।38
कागज

(8) परमार्थनामसंगीति
पत्र–27, अपूर्ण
आकार–22 × 8.5 से.मी.
लिपि–नेवारी
नेपाली सम्बत् 897

व्य० । पाटन (ललितपुर)
एच० 5305
रील सं० एच० 322।3

(9) परमार्थनामसंगीति
पत्र–19, अपूर्ण
आकार–19 × 6.7 से.मी.
लिपि–नेवारी
पत्र–3,5,9,10 अनुपलब्ध

व्य० । सिरूतर
एच० 4918
रील सं० एच० 301।5

(10) परमार्थनामसंगीति
टी० महर्जन
आकार–19 × 2.8 से.मी.
पत्र–36, अपूर्ण
लिपि–नेवारी

व्य० । कीर्तिपुर
एच० 3328
रील सं० एच० 226।15
व्यासफु

(11) परमार्थनामसंगीति (अवलोकितेश्वर-स्तोत्र)
आर० बी० महर्जन
पत्र–31, अपूर्ण
आकार–17 × 7.7से.मी.
लिपि–देवनागरी

व्य० । चोभार
एच० 3200
रील सं० एच० 218।10
व्यासफु

(12) परमार्थनामसंगीति
आर० बी० महर्जन

व्य० । चोभार
एच० 3198

पत्र–23, पूर्ण
आकार–27.7 × 9.5 से.मी.
लिपि–देवनागरी

रील सं० एच० 218।8
ठ्यासफु

(13) परमार्थनामसंगीति
टी० महर्जन
पत्र–28 पूर्ण
आकार–20 × 10.2 से.मी.
लिपि–देवनागरी

व्य० । कीर्तिपुर
एच० 3161
रील० सं० एच०216।10
ठ्यासफु

(14) परमार्थनामसंगीति
टी० एल० महर्जन
पत्र–28, अपूर्ण
आकार–19 × 5.8 से.मी.
लिपि–नेवारी

व्य० । पाटन
एच० 3020
रील सं० एच० 207।5
ठ्यासफु

(15) परमार्थनामसंगीति
टी० महर्जन
पत्र–16, अपूर्ण
आकार–22 × 6.5 से.मी.
लिपि–नेवारी

व्य० । कीर्तिपुर
एच० 2739
रील सं० एच० 193।18
नेपाली कागज

(16) परमार्थनामसंगीति
टी० महर्जन
पत्र–17, अपूर्ण
आकार–15.3 × 11 से.मी.
लिपि–नेवारी

व्य० । कीर्तिपुर
एच० 2668
रील सं० एच० 190।9
नेपाली कागज

(17) परमार्थनामसंगीति
टी० महर्जन
पत्र–30, पूर्ण
आकार–23 × 19.5 से.मी.
लिपि–नेवारी

व्य० । कीर्तिपुर
एच० 2658
रील० सं० 189।12
नेपाली कागज

(18) परमार्थनामसंगीति
टी० एल० महर्जन
पत्र–16, पूर्ण
आकार–26 × 8.7 से.मी.
लिपि–नेवारी
नेपाली सम्बत् 873

व्य० । पाटन
एच० 2213
रील सं० एच० 163|4

(19) पारमार्थनामसंगीति
टी० एल० महर्जन
पत्र–34, पूर्ण
आकार–23 × 11.5 से.मी.
लिपि–देवनागरी

व्य० । पाटन
एच० 1944
रील सं० एच० 145|14
ठ्यासफु

(20) परमार्थनामसंगीति
बी० आर० वज्राचार्य
पत्र–20, पूर्ण
आकार–20 × 7 से.मो
लिपि–नेवारी

व्य० । पाटन
एच० 1403
रील सं० एच० 103|8
नेपाली कागज

(21) परमार्थनामसंगीति
टी० महर्जन
पत्र–34, अपूर्ण
आकार–18.5 × 7.5 से.मी.
लिपि–नेवारी

व्य० । कीर्तिपुर
एच० 1269
रील सं० एच० 94|2
ठ्यासफु

(22) परमार्थनामसंगीति
टी० महर्जन
पत्र–31, पूर्ण
आकार–25.9 × 10.2 से.मो.
लिपि–नेवारी
नेपाली सम्बत्–990

व्य० । कीर्तिपुर
एच० 1255
रील सं० एच० 93|6

(23) परमार्थनामसंगीति — व्य० । पाटन
टी० एल० महर्जन — एच० 780
पत्र–30, अपूर्ण — रील सं० एच० 64।10
आकार–20.8 × 8.5 से.मी.
लिपि–नेवारी

(24) परमार्थनामसंगीति — व्य० । पाटन
पत्र–25, अपूर्ण — एच० 752
आकार–24 × 7.8 से.मी. — रील सं० एच० 62।7
लिपि–नेवारी — कागज

(25) परमार्थनामसंगीति — व्य० । पाटन
बी० आर० वज्राचार्य — एच० 584
पत्र–20, पूर्ण — रील सं० एच० 50।2
आकार–20 × 7 सेमी०
लिपि–नेवारी

(26) परमार्थनामसंगीति — व्य० । पाटन
पत्र–128, अपूर्ण — एच० 418
लिपि–नेवारी — रील सं० एच० 32।2
नेपाली सम्बत्–916

(27) परमार्थनामसंगीति — व्य० । पाटन
वज्राचार्य — एच० 373
पत्र–35, पूर्ण — रील सं० एच० 27।3
आकार–22.2 × 8.5 से.मी. — ठ्यासफु
लिपि–नेवारी

(28) परमार्थनामसंगीति — व्य० । पाटन
पत्र–21, पूर्ण — जी० 43
आकार–18.7 × 7.8 सेमी० — रील सं० जी० 3।7
लिपि–देवनागरी — कागज

(29) परमार्थनामसंगीति
आशाकाजी वज्राचार्य
लिपि–नेवारी
ने० सम्बत्–801

व्य० । पाटन
इ० 13102
रील सं० इ० 596।6

(30) परमार्थनामसंगीति
सी० एम० वज्राचार्य
पत्र–3, अपूर्ण
आकार–27.7 × 6.4 से.मी.

व्य० । काठमाण्डू
इ० 9990
रील सं० इ० 490।15
कागज

(31) परमार्थनामसंगीति
एन० बी० वज्राचार्य
पत्र–36, अपूर्ण
आकार–22.5 × 10.4 से.मी.
लिपि–नेवारी

व्य० । काठमाण्डू
इ० 9611
रील सं० इ० 461।10
ठ्यासफु

(32) परमार्थनामसंगीति
पी० आर० वज्राचार्य
पत्र–18, पूर्ण
आकार–24 × 13 से.मी.
लिपि–नेवारी

व्य० । काठमाण्डू
इ० 8432
रील नं० इ० 408।10
कागज

(33) परमार्थनामसंगीति
पत्र–19, पूर्ण
आकार–23.8 × 11 से.मी.
लिपि–देवनागरी

व्य० । काठमाण्डू
रील न० इ० 377।30
कागज

(34) परमार्थनामसंगीति
पी० आर० वज्राचार्य
पत्र–21, पूर्ण
आकार–18.7 × 8.4 से.मी.
लिपि–देवनागरी

व्य० । भक्तपुर
इ० 7350
रील सं० इ० 356।17
कागज

(35) परमार्थनामसंगीति	व्य० । भक्तपुर
रामभट्ट	इ० 6341
पत्र–39 पूर्ण	रील सं० इ० 311।5
आकार–48 × 10.3 से.मी.	कागज
लिपि–देवनागरी	
(36) परमार्थनामसंगीति	व्य० । काठमाण्डू
वज्राचार्य	इ० 1897
पत्र–11, अपूर्ण	रील सं० इ० 127।36
आकार–24 × 7.5 से.मी.	कागज
लिपि–देवनागरी	
(37) परमार्थनामसंगीति	व्य० । काठमाण्डू
तेजबहादुर	इ० 524
पत्र–24, पूर्ण	रील सं० इ० 46।1
आकार–18.2 × 11.7 से.मी.	
लिपि–देवनागरी	
(38) परमार्थनामसंगीति	व्य०। काठमाण्डू
पत्र–39, अपूर्ण	एन० 393
आकार–15.9 × 7.8 से.मी.	रील नं० डी० 22।8
लिपि–नेवारी	
ने० सं० 1004	
(39) नामसंगीति	रील नं०
	सी० 70।1, 102।21
(40) नामसंगीति	व्य० । कीर्तिपुर
टी० महर्जन	एच० 1250
पत्र–34, अपूर्ण	रील सं० एच० 93।1
आकार–24.2 × 10.5 से.मी.	
लिपि–नेवारी	
(41) नामसंगीति	व्य० । शंखु
जी० एन० श्रेष्ठ	एच० 621

पत्र–24, अपूर्ण
आकार–18.3 × 6.8 से.मी.
लिपि–नेवारी

रील सं० एच० 54|8
नेपाली कागज

(42) नामसंगीति
रामभक्त
पत्र–24, अपूर्ण
आकार–24.4 × 8.1 से.मी.
लिपि–नेवारी

व्य० | भक्तपुर
जी० 5560
रील० सं० जी० 238|4
कागज

(43) नामसंगीति
पी० एन० जोशी
पत्र–6, अपूर्ण
आकार–22.5 × 10.6 से.मी.
लिपि–देवनागरी

व्य० | भक्तपुर
जो० 4373
रील सं० जी० 209|7

(44) नामसंगीति
पी० एन० जोशी
पत्र–14, अपूर्ण
आकार–25.5 × 10.6 से.मी.
लिपि–देवनागरी
ने० सम्बत् 973

व्यय | भक्तपुर
जी० 4466
रील सं० जी० 203|29
कागज

(45) नामसंगीति
सी० एम० वज्राचार्य
पत्र–14, पूर्ण
आकार–23.7 × 9.2 से.मी.
लिपि–नेवारी

व्य० | काठमाण्डू
इ० 11635
रील सं० इ० 537|8
कागज

(46) नामसंगीति
सी० एम० वज्राचार्य
पत्र–11, पूर्ण
आकार–15 × 7.6 से.मी.
लिपि–देवनागरी

व्य० | काठमाण्डू
इ० 10617
रील नं० इ० 493|13
ठ्यासफु

(47) नामसंगीति
सी० एम० वज्राचार्य
पत्र–9, अपूर्ण
आकार–21.7 × 7.4 से.मी.
लिपि–नेवारी
व्य० । काठमाण्डू
इ० 10617
रील सं० इ० 493।8

(48) नामसंगीति
सी० एम० वज्राचार्य
पत्र–24, अपूर्ण
आकार–21.8 × 7.4 से.मी.
लिपि–नेवारी
व्य० । काठमाण्डू
इ० 10612
रील सं० इ० 493।3
कागज

(49) नामसंगीति
सी० एम० वज्राचार्य
पत्र–23, अपूर्ण
आकार–23.2 × 10.4 से.मी.
लिपि–देवनागरी
व्य० । काठमाण्डू
इ० 10610
रील सं० इ 492।46

(50) नामसंगीति
तीर्थ
पत्र–20, पूर्ण
आकार–17.8 × 6.8 से.मी.
लिपि–नेवारी
व्य० । काठमाण्डू
इ० 6496
रील सं० इ० 280।19
कागज

(51) नामसंगीति
एम० गंगा
पत्र–5,
लिपि–देवनागरी
व्य० । संखु
इ० 4159
रील नं० ई० 219।8

(52) नामसंगीति
जी० नाथ
पत्र–25, पूर्ण
आकार–18.3 × 6.5 से.मी.
लिपि–नेवारी
व्य० । संखु
इ० 4947
रील सं० इ० 259।22
कागज

(53) नामसंगीति
विहार
पत्र–2-24, अपूर्ण
आकार–18.9 × 6.8 से.मी.
लिपि–नेवारी

व्य० । काठमाण्डू
डी० 574
रील सं० डी० 27|46
कागज

(54) नामसंगीति
विहार
पत्र–21, अपूर्ण
आकार–17 × 7.5 से.मी.
लिपि–नेवारी

व्य० । काठमाण्डू
डी० 44
रील सं० डी० 24|10

(55) नामसंगीति
केसर लायब्रेरी
पत्र–18, अपूर्ण
आकार–26 × 5 से.मी.
लिपि–नेवारी
नेपाली संवत्–242

काठमाण्डू
मैनु० सं० 118
रील नं० सी० 13|6

(56) नामसंगीति
विहार
पत्र–18, पूर्ण
आकार–25.5 × 15 से.मी.
लिपि–देवनागरी

व्य० । काठमाण्डू
डी० 457
रील सं० डी० 24|27

उपर्युक्त पाण्डुलिपियों के अतिरिक्त भी व्यक्तिगत संग्रहों में नामसंगीति की अन्य बहुत सी पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध होती हैं, जिन्हें स्तोत्र आदि अन्य संग्रहों के साथ संलग्न कर दिया गया है।

नेपाल राष्ट्रिय अभिलेखालय, काठमाण्डू में भी नामसंगीति की अनेक पाण्डुलिपियाँ ताड़पत्र एवं नेपाली कागजों में संरक्षित हैं। अभिलेखालय की प्राप्त सूची के अनुसार उनका विवरण निम्नलिखित है—

क्र० सं०	लगत सं०	ग्रन्थ	वि० सं०	आधार	पत्र सं०	लिपि
1.	च० 2285	नामसंगीति	12	ताड़पत्र	18	नेवारी
2.	पं० 163	परमार्थनामसंगीति	13	„	30	नेवारी
3.	पं० 164	परमार्थनामसंगीति	14 क	„	24	नेवारी
4.	पं० 167	परमार्थनामसंगीति	692	नीलपत्र	17	रंजना
5.	च० 1607	नामसंगीति	693	नीलपत्र	30	रंजना
6.	च० 1154	नामसंगीति	695	कागज	23	नेवारी
7.	च० 2560	नामसंगीति	696	कागज	ठ्यासफु	नेवारी
8.	च० 290	नामसंगीति	697	कागज	28	नेवारी
9.	प्र० 1696	नामसंगीति	698	कागज	ठ्यासफु	नेवारी
10.	प्र० 1696	नामसंगीति	699	कागज	ठ्यासफु	नेवारी
11.	च० 989	नामसंगीति	701	कागज	30	नेवारी
12.	पं० 165	नामसंगीति	702	कागज	30	नेवारी
13.	पं० 165	नामसंगीति	703	नीलपत्र	33	नेवारी
14.	च० 288	नामसंगीति	705	कागज	59	रंजना
15.	पं० 161	परमार्थनामसंगीति	708	कागज	30	नेवारी
16.	च० 1098	परमार्थनामसंगीति	709	कागज	ठ्यासफु	नेवारी
17.	च० 338	परमार्थनामसंगीति	710	कागज	ठ्यासफु	नेवारी
18.	द्वि० 211	परमार्थनामसंगीति	719	नीलपत्र	30	रंजना
19.	पं० 130	नामसंगीतिस्तोत्रसंग्रह	929	कागज	9	नेवारी
20.	च० 2089	नामसंगीतिस्तोत्रसंग्रह	630	कागज	ठ्यासफु	नेवारी
21.	पं० 162	परमार्थनामसंगीति	634	कागज	8	देवनागरी
22.	च० 97	परमार्थनामसंगीति	635	„	8	„

नेपाल राष्ट्रीय अभिलेखालय में इनके अतिरिक्त अन्य प्रतियां भी प्राप्त हो सकती हैं। पाण्डुलिपियों की विश्लेषणात्मक विस्तृत सूचना के अभाव में इन्हीं 22 मातृकाओं की सूचना यहाँ अंकित की गई है।

माईक्रोफिल्म कैटलाग आफ बुद्धिस्ट संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट इन नेपाल, बुद्धिस्ट लायब्रेरी जापान 1981, भाग–1, हिदेनोबु ताकाओका के अनुसार 13 नामसंगीति की पाण्डुलिपियाँ नेपाल के व्यक्तिगत संग्रहों में उपलब्ध हैं, जिनका माइक्रोफिल्म तैयार किया गया है। जिनका विवरण पृष्ठ संख्या—36, 45, 52, 114, 117, 83, 101, 111, 59, 67, 69, 79, 83 में उल्लिखित है।

टोक्यो विश्वविद्यालय, जापान के पुस्तकालय में भी मात्सुनामी[1] की सूची के अनुसार 9 पाण्डुलिपियाँ नामसंगीति की हैं। जिनकी पाण्डुलिपि सं० 207, 208, 209, 210, 211, 212, 213, 214 एवं 296–II हैं। इसकी एक अन्य प्रति इण्डिया आफिस लायब्रेरी में भी उपलब्ध है[2]।

उपर्युक्त सभी पाण्डुलिपियों का कालनिर्णय एक कठिन समस्या है, क्योंकि अधिकतर मातृकाएँ व्यक्तिगत संग्रहों में संरक्षित हैं। तथापि सूची के अनुसार कुछ पाण्डुलिपियों का लेखन-काल अंकित है। तदनुसार अधिकतर प्रतियां नेपाली संवत् 800 से 1000 के मध्य की हैं। फिर भी कुछ मातृकाएँ निश्चय ही काफी प्राचीन प्रतीत होती हैं, इनमें से एक केसर पुस्तकालय में संरक्षित ताड़पत्रीय प्रति है (सं० 118), जिसका समय नेपाली संवत् 242 है, अतः यह 10वीं 11वीं शताब्दी की जान पड़ती है। एक अन्य ताड़पत्रीय प्रति राष्ट्रीय अभिलेखालय में उपलब्ध है (लगत सं० च 2285)। इसके अन्त में लिपिकार ने जो समय दिया है, तदनुसार यह नेपाली संवत् 351 अश्विनी शुक्ल प्रतिपदा शनिश्चर के दिन लिपिबद्ध की गई है। अतः यह प्रति भी 13वीं शताब्दी के लगभग की विदित होती है।[3]

●

---

1. A Catalogue of Sanskrit Manuscript in Tokyo University library By. S. Matsunami 1965.
2. Catalogue of Sanskrit and Prakrit Mss in the library of India office Vol–II, Part–II, Page–1408, No–7759.
3. नामसंगीति के सम्पादित चारों संस्करणों में प्रयुक्त पाण्डुलिपियों का विवरण यहाँ नहीं दिया गया है।

बौद्ध तन्त्रों में बिन्दु का वर्णन

—डॉ० ठाकुरसेन नेगी—

['धीः' के प्रथम और द्वितीय अंक में शरीर स्थित नाड़ी, वायु और चक्रों का वर्णन किया गया है। अब प्रस्तुत निबन्ध में गृहसदृश नाड़ी एवं स्वामीसदृश वायु को आधार बना कर अविशुद्ध (कषाय) शुक्र-रूपी बिन्दु कहाँ पर स्थित है तथा वह किस तरह से संचरित होता है, इसका वर्णन किया जा रहा है।]

नाड़ियों में अवस्थित अविशुद्ध (कषाय) के 36 बिन्दु मानव शरीर में स्थित हैं। नाड़ी और वायु पर आश्रित होने के कारण नाड़ी और वायु के पश्चात् अब यहाँ बिन्दु का वर्णन किया जा रहा है।

च्युति (संक्रान्ति) की वासना से भव (संसार) की निष्पत्ति होती है, किन्तु उसके बन्धन तथा बिन्दु को मर्माहत किये बिना 'चित्तवज्र' सिद्ध नहीं होता, मर्माहत कर मार्ग में उत्थापन (प्रवेश) के लिए उसकी स्थिति का ज्ञान होना आवश्यक है।

गृहसदृश नाड़ी एवं स्वामीसदृश वायु को आधार बना कर स्थित अविशुद्ध शुक्र रूपी बिन्दु कहाँ पर अवस्थित है और वह किस प्रकार संचरित (स्पन्दित) होता है, प्रस्तुत निबन्ध में इसका वर्णन किया जायेगा।

बिन्दु का स्वरूप और उसका वर्गीकरण

बिन्दु तीन भागों में विभक्त है—

1. मूल निष्प्रपञ्च बिन्दु।
2. चित्त के अप्रतीत (अनवबुद्ध) होने के कारण भ्रान्त अविद्या बिन्दु।
3. बन्धन कारक होने से द्रव्य, मन्त्र और वायु इन तीनों से अन्वित बिन्दु।

1. मूल निष्प्रपञ्च बिन्दु—तीन बिन्दुओं में प्रथम निष्प्रपञ्च बिन्दु स्वचित्त सहज ज्ञान है। चित्त का स्वभाव शून्य है, जो निष्प्रपञ्च धर्मकाय है तथा स्वाभाविक प्रभास्वरता ही संभोगकाय है और अनिरुद्ध करुणा द्वारा जो निष्पन्न होता है, वह निर्माणकाय है। इस प्रकार यह तीन कायों के स्वभाव में स्थित है। इन तीन कायों के सत्त्व में होने के लक्षण (चिह्न) वर्तमान पृथग्जन अवस्था में भी भावनाबल द्वारा अनुभूत होते हैं।

2. भ्रान्त अविद्या बिन्दु—यह मूल निष्प्रपञ्च बिन्दु के वायु संसर्ग द्वारा शुक्र-शोणित (श्वेत-रक्त) मिश्रित होने के कारण श्वेतांश द्वारा धारण और रक्तांश द्वारा ग्रहण करता हुआ

उत्पन्न होता है, क्योंकि तथता, अद्वयता एवं नीरूपता को न जानना ही अविद्या है और संसारान्त तक किसी के भी द्वारा अविनष्ट होने के कारण इसे अविद्याबिन्दु कहा गया है।

3. अन्वित बिन्दु—इसका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

आश्रय अवस्था के तीन अन्वित बिन्दुओं की व्यवस्था

अविद्याबिन्दु में सामान्य रूप से—(1) मन्त्रबिन्दु, (2) वायुबिन्दु और (3) द्रव्यबिन्दु ये तीन बिन्दु हैं। विशेष रूप से इन तीनों को भी शुद्ध आधार और शुद्ध कर्ता के रूप में विभक्त कर इसके छः भेद किये जाते हैं, जो निम्नलिखित हैं—

(1) **मन्त्रबिन्दु, प्रथम**—अविद्या, संस्कार और विज्ञान द्वारा परिकल्पित वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान इन चार नामों में परिवर्तित होने के कारण संज्ञा अर्थ को धारण करने वाला शुद्ध मन्त्रबिन्दु कहते हैं।

द्वितीय—प्रतिपक्ष की देवभावना तथा मन्त्रजापादि द्वारा कल्पना के विशोधन करने को शुद्धिकारक परिकल्पित मन्त्रबिन्दु कहते हैं।

(2) **वायुबिन्दु, तृतीय**—आलम्बनप्रत्यय, अधिपतिप्रत्यय एवं समनन्तरप्रत्यय, इन तीन प्रत्ययों के वश से वायुधातु चित्त को चंचल करने में समर्थ होता है। इसलिए वायु द्वारा कृत आधारशुद्धि को वायुबिन्दु कहते हैं।

चतुर्थ—चंचल वायु के इस बन्धनक्रम का शुद्धिकारक वायुबिन्दु है, ऐसा तन्त्रागमों में कहा गया है[1]।

(3) **द्रव्यबिन्दु पंचम**—इन्द्रिय ज्ञान के विषय के रूप में प्रतिभासित होने वाले पाँच अर्थ एवं रूप-स्कन्ध द्वारा संगृहीत शुक्रशोणित पञ्चधातु के द्रव्यबिन्दु हैं, जो शुद्ध द्रव्यबिन्दु हैं।

छठा—अविशुद्ध (कषाय) शुक्रबिन्दु उसके बन्धनक्रम को शुद्ध करने वाला द्रव्यबिन्दु है, ऐसा वर्णन जिन महावज्रधर ने [1]अनुत्तरयोगतन्त्र वज्रमाला में किया है।

द्रव्यबिन्दु का विस्तार से वर्णन करने के पाँच वर्ग हैं—

1. अन्तराभव के प्रत्यय द्वारा उपसंहार।
2. द्विरस (शुक्र-शोणित) रचना का वर्णन।
3. द्विरस का अविशुद्ध (कषाय) में परिवर्तन।
4. 36 धातुओं का विस्तार से वर्णन।
5. शुक्र-शोणित अंश का च्युतिक्रम।

---

1. विस्तृत जानकारी के लिए वज्रमालाभिधानमहायोगतन्त्र एवं इसकी बृहट्टीका गम्भीरार्थदीपिका का तिब्बती संस्करण देखें।

1. अन्तराभव के प्रत्यय द्वारा उपसंहार

उपर्युक्त तीनबिन्दुओं में से द्रव्यबिन्दु बाह्य भाजनलोक द्वारा संगृहीतहोने से बाह्यबिन्दु तथा आभ्यन्तर में वज्रदेह द्वारा संगृहीत होने से आभ्यन्तर बिन्दु, इस प्रकार द्रव्यबिन्दु दो प्रकार का है।

आभ्यन्तर के अर्थ में प्रयुक्त बिन्दु से तात्पर्य सत्त्व के प्रथम गर्भ में प्रतिसन्धि ग्रहण के समय ज्ञानस्वभाव अन्तराभव के उपस्थित होने से माता पिता के द्वारा स्खलित शुक्र-शोणित रस के प्रति ममाग्रह रूपी हेतुप्रत्यय से यदि सत्त्व पुरुष के रूप में उत्पन्न होता है, तो इससे माता को आसक्ति होती है तथा पिता को मत्सर।

इस प्रकार इस निर्वृति अभिनिवेश द्वारा सत्त्व गर्भ में प्रवेश करता है तथा धातुक्रम द्वारा 38 हफ्ते में कललादि[1] रूप से वृद्धि को प्राप्त करता है। संवरोदयतन्त्रराज में कहा है—

शुक्रशोणितयोर्मध्ये बिन्दुरूपेण तिष्ठति।
प्रथमं कललावस्था अर्बुदं च द्वितीकम् ॥ 17 ॥
तृतीयः पेशितो जातश्चतुर्थं घनमेव च।
वायुना प्रेष्यमाणस्य मांसाकारवद् भवेत् ॥ 18 ॥
पञ्चमासगतं बीजं षष्ठे स्फोटः प्रजायते।
केशरोमनखचिह्नं सप्तमासेन जायते ॥ 19 ॥
इन्द्रियाणि च रूपाणि व्यज्यन्तेऽष्टममासतः।
सम्पूर्णं नवमासेन चेतना दशमासतः ॥ 20 ॥

2. द्विरस (शुक्र-शोणित) रचना का वर्णन

द्रव्यबिन्दु में (1) शुक्रांश और (2) शोणितांश इस प्रकार दो विभेद किये गये हैं।

(1) शुक्रांश (श्वेतभाग) रस—यह शुक्रांश रस मध्यनाड़ी के ऊपर स्थित होता है तथा इसका आकार हुँ स्वभाव अधोविलोकित, परिमाण में सर्षप के तुल्य होता है। इसका रंग श्वेत, स्निग्ध, उज्ज्वल एवं महातेजसदृश होता है।

---

1. कललादि आठ अवस्थाओं का वर्णन निम्नलिखित ग्रन्थों में है—
   - i योगाचारभूमिशास्त्र।
   - ii अभिधर्मकोष।
   - iii विसुद्धिमग्गो।
   - iv योगिनीजालमहातन्त्र।
   - v महासंवरोदयतन्त्र एवं इसकी बृहट्टीका पद्मिनी।
   - vi अभिधानोत्तरतन्त्र।
   - vii गुह्यातिगुह्यतन्त्र।
   - viii वज्रवाराहीरहस्य।

यह प्रभास्वर आमलक के सदृश है। यह पिता से प्राप्त होता है। पिता का यह शुक्रांश सर्वश्रेष्ठ है इस रस अंश का स्वभाव हेरुक एवं महासुखोपाय है, जो अकनिष्ठ पद के वेग से उत्पन्न होता है।

(2) शोणितांश—यह रस नाभि के अधःभाग की तीन नाड़ियों के संगम में स्थित है, इसका रंग लाल है, यह माता से प्राप्त होता है तथा यह अत्युष्ण होने से प्रभास्वर भी होता है।

उदाहरणार्थ—यह वडवानल के सदृश है। इस बिन्दु का आकार ह्रस्व 'अ' के सदृश या पूर्णविराम के सदृश है तथा इस शोणितांश का स्वभाव वज्रवाराही एवं प्रज्ञाशून्यतास्वरूप है।

सामान्य पिण्डार्थ—शुक्रांश रस के सुख में रमणीयता (मनोहरता) होने के कारण इसे वसन्त तथा शोणितांश के सुख में स्थैर्य (दृढता) होने के कारण इसे तन्त्रशास्त्रों में बिन्दु कहा गया है।

3. द्विरस का अविशुद्ध (कषाय) में परिवर्तन

इन दो रसों पर आश्रित होने के कारण अविशुद्ध धातुएँ भी दो हैं। शोणितांश रक्त का स्वभाव सूर्यधातु है, इस ह्रस्व 'अ' के द्वारा अग्नि का उत्पाद होने से यह रसना नाड़ी में उत्पन्न होता है। शुक्रबिन्दु शिरस् से प्रपतित होता है तथा उसका ललना नाड़ी में अधःपतन होता है।

खाद्य-पेय सामग्री द्वारा रस आदि का निर्माण

आध्यात्मिक यज्ञ में शरीर हवनकुण्ड तथा बाहर की खाद्य एवं पेय सामग्री आहुति द्रव्य के सदृश है तथा ललना रसना द्वारा उत्पन्न दो हाथ पात्र एवं श्रुवा के सदृश हैं, मुख हवनकुण्ड के सदृश है। वहाँ पर स्कन्ध, धातु, आयतन, शून्यतास्वभाव देव के रूप में सिद्ध लोगों की पूजा (अर्चना) एवं पोषण करते हैं।

च्युति (संक्रान्ति) कर्म करने वाली समान वायु है, श्लेष्मा क्लेदकारक एवं पित्त पाचनकारक है। इसलिए यह तीनों त्रिमुख अग्निदेव के स्वभाव में स्थित हैं।

इनमें से प्रथम (पित्त) द्वारा खाद्य एवं पेय सामग्री का ज्वलन (ताप) होता है। द्वितीय—(श्लेष्मा) द्वारा पचाकर गलाया जाता है। तृतीय—(वायु) द्वारा विशोषण होता है। इस प्रकार से रसों में क्रम से परिवर्तन होता है।

आभ्यन्तर के सात रसों की उत्पत्ति

आमाशय में रस का कषाय निर्मित होता है। अन्न-पान (खाद्य-पेय) का रस प्लीहा में चार महानाड़ियों से होता हुआ महारक्त में परिवर्तित होकर सभी नाड़ी-स्थानों में व्याप्त होता है। यही रक्त एक दिन में रसकषाय से निर्मित होकर इसके द्वारा मांस की उत्पत्ति होती है। यही

मांस एक दिन में रस एवं रक्त कषाय से फलित होता है। इनके द्वारा मेदस् की वृद्धि होती है। तदनन्तर एक दिन में रसादि कषाय से अस्थि निर्मित होती है। इन सबसे मज्जा की उत्पत्ति होती है। यही मज्जा एक दिन में निर्मित होकर तदनन्तर इन रसों से शुक्र की उत्पत्ति करती है। इस प्रकार खाद्य एवं पेय सामग्री से सात दिन में सप्त रसादि कषाय के रूप में परिणत होते हुए शुक्र तक इनमें सात परिवर्तन होते हैं।

यही अष्टांग वैद्यक में देह के द्वारा गृहीत सप्त रस तथा कालचक्रादि तन्त्रग्रन्थों में आभ्यन्तर सप्त रसों की उत्पत्ति के रूप में विस्तृत वर्णित है।[1]

अविशुद्ध (कषाय) रस का परित्याग (निःसरण)

इस प्रकार यह खाद्य एवं पेय सामग्री ज्वलित, पाचित और विशोषित होकर ठोस एवं तरल सप्त धातुओं के रूप में शरीरमें यथास्थान पहुँच जाती है। अवशिष्ट मल का भी अंतड़ियों में होते हुए क्रमशः मलद्वार से बहिर्गमन होता है तथा तरल द्रव्य का मूत्राशय में एकत्र होकर मूत्रमार्ग द्वारा बहिर्गमन होता है। इस प्रकार प्रतिदिन रसादि द्वारा एकैक अविशुद्ध (कषाय) रूप से भिन्न-भिन्न रूप में मलों की उत्पत्ति होती है। जो इस प्रकार है—

रक्त कषाय से प्लीहन के स्थान में पित्त की उत्पत्ति होती है। पित्त के रस से देह में लसिका की उत्पत्ति होती है। इस पित्त कषाय का अधः गमन होने पर उसके द्वारा मल एवं मूत्र के गन्ध एवं पीत रंग की उत्पत्ति होती है। मांस कषाय से चर्म एवं मल की उत्पत्ति होती है। मेदस् कषाय से गुल्म की उत्पत्ति होती है। अस्थि कषाय से दांत एवं नाखून की उत्पत्ति होती है। मज्जा कषाय से भीतर के श्लेष्मन्, सिंघाणक एवं कफ की उत्पत्ति होती है।

शुक्र का रस और उसका कषाय में परिवर्तन

यह शुक्र एक दिन में रस आदि कषाय से अलग होने के कारण इस कषाय रस का मध्य नाड़ी के अधःभाग में प्रपतन होकर इन्द्रिय एवं रोमादि द्वारा बहिर्गमन होता है। यह रस देह को बल, ओजस्, तेजस्, एवं वर्ण प्रदान करता है[2]।

1. सप्त रस की उत्पत्ति का विस्तार से वर्णन निम्नलिखित तन्त्र ग्रन्थों में है—
   I कालचक्रतन्त्र एवं इसकी बृहट्टीका विमलप्रभा।
   II वज्रमालाभिधानमहायोगतन्त्र एवं इसकी बृहट्टीका गम्भीरार्थदीपिका।
   III गुह्यातिगुह्यतन्त्र।
   IV वैद्याष्टांग।
2 शुक्र का रस और कषाय में परिवर्तन का विस्तार से वर्णन निम्नलिखित तन्त्र ग्रन्थों में है—
   I कालचक्र तन्त्र एवं इसको बृहट्टीका विमलप्रभा।
   II हेवज्रतन्त्र एवं इसकी बृहट्टीकाएँ 1. योगरत्नमाला 2. मुक्तिकावली 3. रत्नावली आदि।

अग्नि, एवं वायु ये चार मुख्य धातुएँ व्याप्त होती हैं। इन चार में से प्रत्येक के भी चार-चार भेद होते हैं, यथा पृथिवी की पृथिवी, पृथिवी का अप, पृथिवी का अग्नि, पृथिवी का वायु, एवं जल का जल, जल का अग्नि, जल का वायु और जल की पृथिवी। इसी प्रकार अग्नि और वायु के भी सूक्ष्म विभेद होते हैं। अतः चार के चार-चार भेद होने से (4 × 4) = 16 भेद वाले 16 नाड़ी दलों से युक्त होने के कारण बन्धन क्रम के उपाय एवं प्रज्ञा इन दो से इन 16 अंशों का कण्ठचक्र अर्थात् संभोगचक्र में प्रपात होता है तथा महासुख के परिपक्व होने से यह संख्या घट कर 16 के आधे भाग 8 अंश का हृदय चक्र में प्रपात होता है। इस 8 भाग के भी आधे 4 भाग का नाभिचक्र की चार मुख्य नाड़ियों में प्रपात होता है। तत्पश्चात् इनके द्वारा बिन्दु के साथ संयुक्त होने पर रक्तभाग रस का चण्डाली की अग्नि में प्रपात होता है।

अतः शङ्खिनी नाड़ी में किञ्चित्कालिक वास के काल में शुक्ल पक्ष के पूर्ण होने पर 16 वें भाग में परिवर्तन होता है। इस प्रकार महासुख के परिपूर्ण होने पर इसकी व्यापकता को सीमित न कर सकने से इसका बाह्य में प्रस्रवण होता है। इस पर आश्रित होने से देह के बाहर पर्वों (ग्रन्थियों) में भी तिथिस्वभाव धातुओं की च्युति होती है, जो वर्तमान में ऊर्ध्व में प्रतीत होती है। इस प्रकार शुक्ल पक्ष में शुक्र की वृद्धि, कृष्ण पक्ष में ह्रास तथा कृष्ण पक्ष में शोणित अंश की वृद्धि, शुक्ल पक्ष में ह्रास, इस क्रम से बिन्दु की रसच्युति होती है।

उपर्युक्त वर्णन कालचक्रतन्त्र, ज्योतिष एवं भैषज्य शास्त्रों में कथित नय के अनुसार है[1]।

च्युति (संक्रान्ति) के कृत्य

त्रिविष (राग, द्वेष, मोह) सास्रव क्लेशों को उत्पन्न करते हैं तथा धातुच्युति तक बिन्दु की वृद्धि करते हैं। सत्त्वों का हृदय सुखाभिलाषी होता है, अतः उसमें सर्वप्रथम राग उत्पन्न होता है। इसी राग के आधिपत्य से मोहित होकर सहज ज्ञान को न जानने के कारण मोह उत्पन्न होता है और इसी मोह के प्रसुत होने पर राग के अवगत होने से द्वेष-चित्त उत्पन्न होता है।

इस प्रकार उपर्युक्त त्रिविष के आधिपत्य से सत्त्व संसारसागर (भवसागर) में चक्र के समान भ्रमण करते हैं। फलतः यह सास्रव क्लेश ही च्युति का कृत्य अर्थात् संसार उत्पन्न करने का आधार है।

प्रतिपक्ष बिन्दु के बन्धन क्रम

बोधिचित्त की च्युति होने से सत्त्व संसार में चक्कर काटता है, किन्तु उसकी अच्युति व उसके अवबद्ध होने पर सहज ज्ञान के उदित होने से निर्वाण में गमन होता है।

अतः अच्युति में बद्ध करने के उपायों का अनुष्ठान करना चाहिए, एतदर्थ जिनवज्रधर द्वारा

1. विस्तृत जानकारी के लिए कालचक्रतन्त्र की बृहट्टीका विमलप्रभा एवं वज्रमालाभिधानमहायोगतन्त्र एवं इसकी बृहट्टीका गम्भीरार्थदीपिका देखें।

4. 36 धातुओं का वर्णन

द्रव्यबिन्दु में रस कषाय की 36 धातुएँ हैं। इसके अत्यधिक विस्तृत वर्णन में जितनी नाड़ियां हैं, उतनी ही धातुएँ भी हैं।

5. श्वेतांश एवं रक्तांश की च्युति (असंक्रान्ति) क्रमादि का निर्देश

(1) सामान्य रूप से 72 धातुओं के रूप में परिवर्तन—24 महानाड़ियों में पतित धातुओं का प्रत्येक में विलय (नाश), संभोग (उपभोग), अधिपति (आधिपत्य) इन तीन में विभेद होने के कारण (24 × 3) = 72 धातुओं के रूप में परिवर्तन होता है।

72000 धातुओं की वर्तमान स्थिति

24 धातुओं में से प्रत्येक का 3000 में विभेद होने से (24 × 3000) = 72000 धातुएँ होती हैं। जो इस प्रकार हैं—

विलय (नाश)

वायु प्रधान होने के कारण 24000 धातुएँ हैं।

संभोग (उपभोग)

इसमें श्वेत अंश प्रधान होने के कारण 24000 धातुएँ हैं।

अधिपति (आधिपत्य)

इसमें रक्त अंश प्रधान होने के कारण 24000 धातुएँ हैं, जो चन्द्र, सूर्य एवं राहु सदृश तीन धातुएँ हैं।

इसके अतिरिक्त साढ़े तीन कोटि संख्या युक्त धातुएँ देह के रोम पर्यन्त नाड़ियों में व्याप्त हैं[1]। ऐसा स्तोत्रवृत्ति में भी कहा गया है।

(2) शुक्र-शोणित बिन्दु की रस च्युति—72000 धातुओं में से विशेषतया शुक्र रस अंश या बोधिचित्त ललाट (मूर्धा) के १६ नाड़ी दलों में स्थित नाड़ियों द्वारा पृथिवी, अप,

III योगिनीजालमहातन्त्रराज।
IV संवरोदयतन्त्रराज एवं इसकी बृहट्टीका पद्मिनी।
V वज्रवाराहीपरमरहस्यतन्त्र।

1. इनका वर्णन विस्तार रूप से निम्नलिखित ग्रन्थों में है—
I वज्रमालाभिधानमहायोगतन्त्र एवं इसकी बृहट्टीका गम्भीरार्थदीपिका।
II हेवज्रपिण्डार्थवज्रगर्भटीका।
III बुद्धानुस्मृतिसमाधिसमुद्रसूत्र।
IV गुह्यातिगुह्यतन्त्र।
V आनन्दगर्भावक्रान्तिनिर्देशसूत्र पिण्डार्थस्ववृत्ति।
VI स्तोत्रवृत्ति।

अग्नि, एवं वायु ये चार मुख्य धातुएँ व्याप्त होती हैं। इन चार में से प्रत्येक के भी चार-चार भेद होते हैं, यथा पृथिवी की पृथिवी, पृथिवी का अप, पृथिवी का अग्नि, पृथिवी का वायु, एवं जल का जल, जल का अग्नि, जल का वायु और जल की पृथिवी। इसी प्रकार अग्नि और वायु के भी सूक्ष्म विभेद होते हैं। अतः चार के चार-चार भेद होने से (4 × 4) = 16 भेद वाले 16 नाड़ी दलों से युक्त होने के कारण बन्धन क्रम के उपाय एवं प्रज्ञा इन दो से इन 16 अंशों का कण्ठचक्र अर्थात् संभोगचक्र में प्रपात होता है तथा महासुख के परिपक्व होने से यह संख्या घट कर 16 के आधे भाग 8 अंश का हृदय चक्र में प्रपात होता है। इस 8 भाग के भी आधे 4 भाग का नाभिचक्र की चार मुख्य नाड़ियों में प्रपात होता है। तत्पश्चात् इनके द्वारा बिन्दु के साथ संयुक्त होने पर रक्तभाग रस का चण्डाली की अग्नि में प्रपात होता है।

अतः शङ्खिनी नाड़ी में किञ्चित्कालिक वास के काल में शुक्ल पक्ष के पूर्ण होने पर 16 वें भाग में परिवर्तन होता है। इस प्रकार महासुख के परिपूर्ण होने पर इसकी व्यापकता को सीमित न कर सकने से इसका बाह्य में प्रस्रवण होता है। इस पर आश्रित होने से देह के बाहर पर्वों (ग्रन्थियों) में भी तिथिस्वभाव धातुओं की च्युति होती है, जो वर्तमान में ऊर्ध्व में प्रतीत होती है। इस प्रकार शुक्ल पक्ष में शुक्र की वृद्धि, कृष्ण पक्ष में ह्रास तथा कृष्ण पक्ष में शोणित अंश की वृद्धि, शुक्ल पक्ष में ह्रास, इस क्रम से बिन्दु की रसच्युति होती है।

उपर्युक्त वर्णन कालचक्रतन्त्र, ज्योतिष एवं भैषज्य शास्त्रों में कथित नय के अनुसार है[1]।

च्युति (संक्रान्ति) के कृत्य

त्रिविष (राग, द्वेष, मोह) सास्रव क्लेशों को उत्पन्न करते हैं तथा धातुच्युति तक बिन्दु की वृद्धि करते हैं। सत्त्वों का हृदय सुखाभिलाषी होता है, अतः उसमें सर्वप्रथम राग उत्पन्न होता है। इसी राग के आधिपत्य से मोहित होकर सहज ज्ञान को न जानने के कारण मोह उत्पन्न होता है और इसी मोह के प्रसृत होने पर राग के अवगत होने से द्वेष-चित्त उत्पन्न होता है।

इस प्रकार उपर्युक्त त्रिविष के आधिपत्य से सत्त्व संसारसागर (भवसागर) में चक्र के समान भ्रमण करते हैं। फलतः यह सास्रव क्लेश ही च्युति का कृत्य अर्थात् संसार उत्पन्न करने का आधार है।

प्रतिपक्ष बिन्दु के बन्धन क्रम

बोधिचित्त की च्युति होने से सत्त्व संसार में चक्कर काटता है, किन्तु उसकी अच्युति व उसके अवबद्ध होने पर सहज ज्ञान के उदित होने से निर्वाण में गमन होता है।

अतः अच्युति में बद्ध करने के उपायों का अनुष्ठान करना चाहिए, एतदर्थ जिनवज्रधर द्वारा

---

1. विस्तृत जानकारी के लिए कालचक्रतन्त्र की बृहट्टीका विमलप्रभा एवं वज्रमालाभिधानमहा-योगतन्त्र एवं इसकी बृहट्टीका गम्भीरार्थदीपिका देखें।

विशिष्ट उपाय भाषित हैं। उनके अनुसार अनुष्ठान करने से अनास्रव धातु में बद्ध होने से पुद्गल समर्थ (शक्त) होता है।

उदाहरणार्थ पारद का अग्नि के साथ संसर्ग (समागम) होने पर वह उड़ जाता है, किन्तु किसी विशेष द्रव्य के साथ योग करने पर वह अग्नि द्वारा बद्ध होता है। इसी प्रकार इसे जानना चाहिए। जिस प्रकार वज्र का पद्म के साथ स्पर्श होने पर धातु का प्रस्रवण होता है, परन्तु विशेष उपाय करने पर स्पर्श द्वारा बद्ध होता है। जिस प्रकार पारद के बद्ध होने पर लोह धातु का स्वर्ण में परिवर्तन हो सकता है, ठीक उसी तरह धातु के बद्ध होने पर अविशुद्ध रस के स्कन्ध, धातु एवं आयतनों का बुद्धकाय में परिवर्तन हो सकता है।

दर्शनमार्ग प्राप्त करने का क्रम

प्राणायाम के विशुद्ध होने पर वज्रमणि में स्थित चार नाड़ियों के अच्युति (असंक्रान्ति) के आधार पर विशुद्ध होने से द्रव बोधिचित्त (शुक्र) का घन में परिवर्तन होने के कारण वह प्रस्रुत नहीं होता है।

इस लिए लग्न (12 लग्न मेषादि) की एक वायु के निरुद्ध होने के कारण दर्शनमार्ग के विषय सत्यार्थ का साक्षात् ग्रहण नामक अंग परिपूर्ण होने से अधिमुक्ति चर्या में निष्ठा होती है। इस लिए योगी प्रथम आर्यभूमि—दर्शनमार्ग को प्राप्त करता है।

भावना मार्ग प्राप्त करने का क्रम

इसके पश्चात् भावना मार्ग के लक्षणों से युक्त अनुस्मृति अंग के विशुद्ध होने पर 10 पारमिता, त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म, संघ), बुद्धानुस्मृति, धर्मानुस्मृति आदि 16 अनुस्मृतियाँ तथा 16 आनन्दों का योग होने के कारण बिन्दु की अच्युति (असंक्रान्ति) होती है। फलतः बिन्दु के स्खलित न होकर दृढीभूत होने से समाधि काल में योगी के स्वरस (शुक्र) का ऊर्ध्व संचार होता है।

इस प्रकार ऊर्ध्व संचार द्वारा क्रमशः 12 भूमियाँ प्राप्त करने पर वज्रमणि से ललाट चक्र तक 21600 कर्मवायुओं में से प्रत्येक निरुद्ध हो जाती है। अतः परमाक्षर सुखानुभूति में क्षणों की जितनी संख्या होती है, उनमें प्रत्येक क्षण में वृद्धि होने से 12 भूमियों को पार कर के साधक बुद्ध हो जाता है।

दोष अपकर्षण के निर्देश

इन भूमियों को पार करने में दोष बाधक होते हैं, इसलिये इनके अपकर्षण का निर्देश किया गया है। जिसके तीन भेद हैं—

1. दोष की पहचान।

2. दोष का हेतु ।

3. दोष अपनयन के उपाय ।

1. दोष की पहचान

धातु के अवशिष्ट (कषाय) रस प्रायः वात, पित्त तथा कफ[1] इत्यादि व्याधि पैदा करते हैं ।

कफ व्याधि—श्वेत अंश रूपी कषाय द्वारा पैदा हुई कफ की व्याधि मस्तिष्क में आश्रित होने के कारण ऊर्ध्व में स्थित होती है, किन्तु इसका पृथिवी तथा अप्‌धातु स्वभाव होने से यह अधः संचार (प्रपात) करती है ।

वायु (वात) व्याधि—राहु कषाय द्वारा पैदा हुए वायु की व्याधि नाभि तथा गुह्य स्थान में आश्रित होने के कारण यह अधः स्थित होती है, किन्तु इसका स्वरूप अर्थात् वायु के ऊर्ध्व स्वभाव होने के कारण यह ऊर्ध्व में शिरोभ्रम इत्यादि व्याधि पैदा करती है ।

पित्त व्याधि—शोणित (रक्त) अंश कषाय द्वारा उत्पन्न पित्त की व्याधि प्लीहन् में आश्रित होकर मध्य में स्थित होती है, किन्तु उस कषाय के अस्थिर स्वभाव होने पर अग्निसदृश होकर ऊर्ध्व में व्याधि पैदा करती है । इस प्रकार ये तीन व्याधि त्रिविषमूलक है ।

2. दोष का हेतु

कफ व्याधि—चित्तसंतति के मोहयुक्त होने के कारण कफ पैदा होता है ।

पित्त व्याधि—चित्तसंतति के द्वेषयुक्त होने के कारण पित्त पैदा होता है ।

वायु व्याधि—चित्तसंतति के राग से युक्त होने के कारण वायु पैदा होता है ।

इस प्रकार वायु से युक होने पर सभी व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं या उनकी वृद्धि में सहायता करती हैं । अतः जल, अग्नि और वायु तीनों व्याधि पैदा करते हैं ।

इस प्रकार उपर्युक्त इन तीन दोषों द्वारा देह के तत्त्व दूषित होते हैं । केवल इतना ही नहीं, बल्कि चित्त में भी प्रीति, सुख, विचार आदि कल्पनाएँ उद्‌भूत होती हैं, जिनके द्वारा देह में कम्पन होने से समाधि में तीन दोष उत्पन्न होते हैं ।

सूर्य के कषाय से देह में उद्‌भूत रक्त दोष द्वारा पित्त की व्याधि उत्पन्न होती है तथा चित्त में समाधि के दोष, कल्पना और विचार आदि, अग्नि के सदृश उत्पन्न होते हैं ।

---

1. वात, पित्त तथा कफ इत्यादि व्याधियों का विस्तृत वर्णन निम्नलिखित तन्त्र ग्रन्थों में है—
   I. कालचक्र तन्त्र एवं इसकी बृहट्टीका विमलप्रभा ।
   II अमृतकणिका नामसंगीतिटिप्पणी ।
   III अमृतकणिकोद्योत नामसंगीतिटीका ।
   IV नाममन्त्रार्थावलोकिनी नामसंगीतिटीका ।
   V चतुष्पीठमहातन्त्र एवं इसकी टीकाएँ ।

इसी तरह चन्द्रमा के कषाय द्वारा देह में कफ की व्याधि पैदा होती है तथा चित्त में प्रीति, सुख आदि अप् के सदृश उत्पन्न होते हैं।

राहु के कषाय द्वारा देह में वायु की व्याधि उत्पन्न होती है तथा चित्त में विकल्पना आदि वायुसदृश दोष उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त त्रिदोष हेतुओं के द्वारा बाहर भाजनलोक का नाश भी होता है।

प्रथम समाधि—यह अग्नि द्वारा नष्ट होती है। **द्वितीय समाधि**—यह जल द्वारा नष्ट होती है। **तृतीय समाधि**—यह वायु द्वारा नष्ट होती है।

इस प्रकार इन हेतुओं द्वारा क्रमशः आभ्यन्तर समाधि के उपर्युक्त त्रिदोष उत्पन्न होने से समाधि नष्ट होती है।

चतुर्थ समाधि—अग्नि, जल तथा वायु तीनों से नष्ट न हो सकने के कारण वह त्रिदोष से अकम्पित रहती है, किन्तु अनित्य होने के कारण सत्त्वलोक का उत्पाद एवं विनाश होता है।

(3) **दोष अपनयन के उपाय**

बाह्य में आकाश, भाजनलोक तथा पृथिवी सत्त्वलोक पर आश्रित है। इसी प्रकार आभ्यन्तर में आकाश तथा पृथिवीधातु देह एवं चित्त इन दो पर स्थित होने के कारण उन पर आश्रित है।

अतः बाह्य एवं आभ्यन्तर दोनों भाजनलोक तथा सत्त्वलोक को नष्ट करने का दोष इन दो में नहीं होता। इसलिए विघ्न का नाश करने के लिए गुरु (वज्राचार्य) द्वारा आकाश एवं पृथिवी इन दो के गुणों के मर्म को जानना चाहिए, तभी जल, अग्नि, वायु इन तीनों के दोष को नष्ट अर्थात् अवमर्दित किया जा सकता है।

इसका मर्म यह है कि अधोवायु पृथिवीधातु तथा ऊर्ध्ववायु आकाशधातु के समान है, अतः अधोवायु को संकुचित करने पर वायु के दोष तथा ऊर्ध्ववायु को प्रतिहत (बद्ध) करने पर कफ अर्थात् जल के दोष नष्ट होते हैं तथा दोनों का परित्याग करने पर पित्त अर्थात् अग्नि के दोष नष्ट होते हैं।

उपसंहार

इस प्रकार पाँच धातु युक्त द्रव्यबिन्दु, परिकल्पित मन्त्रबिन्दु तथा परतन्त्र वायु ये तीन बिन्दु हैं। आधारकाल में इन तीन बिन्दुओं का सहज अविद्या एवं प्रतीत्यसमुत्पाद के साथ आधाराधेय सम्बन्ध होने के कारण सम्मिश्रित रूप से इन दोनों का ग्रहण होने से स्वसंवेदन अशुद्ध रूप में प्रस्तुत होता है।

इसलिए इन्हें संसार (भव) के दोष उत्पन्न होने का आधार बताया गया है। जिसे बन्धन से बद्ध किया जाता है, उसको गुरु द्वारा उपदिष्ट विशेष उपाय द्वारा अधिगृहीत होने पर वह संसार के नाश का कारण भी है[1]। ऐसा तन्त्रागमों में बताया गया है। हेवज्रतन्त्रराज में कहा भी है—

येन येन हि बध्यन्ते जन्तवो रौद्रकर्मणा।
सोपायेन तु तेनैव मुच्यन्ते भवबन्धनात्॥

मनुष्य अनादिकाल से, अर्थात् चिरकाल से महारागवशात् काम, रूप तथा अरूप इन त्रिभवों (भवत्रय) में अपने कर्मक्लेशों द्वारा संसरण करता है। इसलिए राग (काम) हेतु और फल से सत्त्वों (लोगों) की चित्तसंतति को विमुक्त करने के लिए बौद्ध तन्त्रागमों में शुक्र-शोणित धातु के द्रव्य-बिन्दु की भावना करने का क्रम प्रदर्शित किया गया है।

जो मनुष्य महाद्वेषवशात् दुर्जन के रूप में उत्पन्न होते हैं, उन लोगों की चित्तसन्तति को उससे शीघ्र मुक्त करने के लिए परिकल्पित मन्त्रबिन्दु की भावना करने का क्रम बतलाया गया है।

जिन मनुष्यों को महामोह के वश से चित्तसंतति में भ्रान्ति उत्पन्न होती है, वे लोग त्रिभव की योनियों से त्राण पाने के लिए अंजन, गुटिका आदि आठ सिद्धियों की प्राप्ति का प्रयास करते हैं तथा अभ्रान्त सत्त्व सर्वाकारवरोपेत ज्ञान की प्राप्ति एवं अपने इन्द्रिय प्रत्यक्ष में उसके प्रतिभास के लिए प्रयास करते हैं। इसलिए उनके लिए वायु-बिन्दु की भावना करने का क्रम प्रदर्शित किया गया है।

यहाँ 'त्रिविष' में 'महा' शब्द को जोड़ने का तात्पर्य यह है कि इस त्रिविष में अत्यन्त वृद्धि (विकास) सम्भव है, किन्तु उपर्युक्त त्रिविष का नाश करने वाला ज्ञान महारागादि शब्द के अभिधेय से अतुल्य है।

सामान्य पिण्डार्थ

इस प्रकार पूर्व निबन्धों में निर्दिष्ट नाडी, वायु तथा इस निबन्ध में निर्दिष्ट बिन्दु, इन तीनों का

नेयार्थ—नाडी में वायु तथा वायु में बिन्दु का आश्रित होना है।

---

1. इनका विस्तार से वर्णन निम्नलिखित तन्त्र ग्रन्थों में है—
   I कालचक्रतन्त्र एवं इसकी बृहट्टीका विमलप्रभा।
   II वज्रमालाभिधानमहायोगतन्त्र एवं इसकी टीका गम्भीरार्थदीपिका।
   III गुह्यातिगुह्यतन्त्र।
   IV हेवज्रतन्त्रराज एवं इसकी तीन टीकाएँ—1. योगरत्नमाला, 2. मुक्तावली 3. रत्नावली।

नीतार्थ— चित्त के अवभासांश के रूप में उदय होने से अन्योन्य सापेक्ष या प्रतीत्यसमुत्पन्न के रूप में अवभास होना है। उसके सहज ज्ञान का आश्रय होने के कारण इसे वज्रदेह कहा गया है।

इस प्रकार का सामान्य वर्णन अनुत्तर योगतन्त्र विशेषतः हेवज्रतन्त्र के अनुसार किया गया है। हेवज्रतन्त्रराज में कहा भी है—

द्वात्रिंशल्लक्षणी शास्ता अशीतिव्यञ्जनी प्रभुः।
योषिद्भगे सुखावत्यां शुक्रनाम्ना व्यवस्थितः॥

अतः आधारकाल में रूपकाय शुक्र के आकार में देह में स्थित होता है। इसलिए धातु तथा सुख की अपेक्षा करता है। देह में स्थित युगनद्ध रूप ही बुद्धगर्भ है तथा इसके विकसित होने को गोत्र एवं वज्रदेह के रूप में एक ही बताया गया है। ऐसा परम सातवें करमापा जो के द्वारा उक्त है।

●

सिद्ध एवं अपभ्रंश साहित्य का सर्वेक्षण (३)

—वङ्छुग् दोर्जे—

['धीः' के द्वितीय अंक में सिद्ध एवं अपभ्रंश साहित्य के सर्वेक्षण के अन्तर्गत भोट साहित्य के आधार पर कुछ सिद्धों की जीवनी और उनकी कृतियों पर प्रकाश डाला गया था। प्रस्तुत अंक में भी उसी विधि से 13 सिद्धों की जीवनी तथा कृतियों का परिचय दिया गया है।]

अभयाकर गुप्त

तारानाथ के मतानुसार अभयाकर गुप्त का जन्म दक्षिण में ओड़िशा के निकट जरिखण्ड नामक स्थान में हुआ। इनके पिता क्षत्रिय और माता ब्राह्मणी थी। इन्होंने कुमारावस्था में ही वेदान्त, व्याकरण तथा न्यायशास्त्र पर पूर्ण विद्वत्ता प्राप्त की। एक समय एकान्त वन में मन्त्रोच्चारण करते हुए लीन थे तो एक युवती ने उनके सम्मुख प्रकट होकर कहा—मैं क्षुद्र जाति में पैदा हुई हूँ तथा तुमसे सहभोगाचरण करना चाहती हूँ। उनके इनकार करने पर भी वह हठ करने लगी तो उन्होंने अपने सहयोगी बौद्ध योगी से उस लड़की के बारे में पूछा। उसने कहा—वह वज्रयोगिनी थी, अतः तुमने उससे सहाचरण न कर गलत किया। तुम बौद्धगोत्रीय प्रतीत होते हो, अतः यह उचित होगा कि बंगाल में जाओ जहाँ बौद्ध सूत्र और तन्त्र के अनेक सुविज्ञ हैं उनसे अध्ययन कर साधना करो। तदनुसार वे बंगाल में जाकर भिक्षु बनकर तन्त्र की साधना करने लगे। एक बार विहार की छत पर बैठे साधना कर रहे थे तो एक योगिनी ने गीला मांस, जिससे अभी-अभी खून सरक रहा था, लाकर उनको दिया तो उन्होंने कहा मैं बौद्ध भिक्षु हूँ, इस प्रकार का मांस कैसे खा सकता हूँ, उनके इनकार कर देने पर वह तत्क्षण अन्तर्धान हो गयी। वह योगिनी थी ऐसा जानकर वे दुःखी हुए। इसके बाद वे नालन्दा गये और सौरिपाद से, जिनसे इन्होंने पहले भिक्षु की दीक्षा ली थी, तन्त्र का अभिषेक लिया और अध्ययन भी किया। एक दिन पुनः गुरु की सेविका ने, जो एक उपासिका थी, उनसे सहभोग करना चाहा, परन्तु उन्होंने ऐसा करना उचित नहीं समझा, यद्यपि वह भी साक्षात् वज्रयोगिनी थी। तब सौरिपाद ने उनसे कहा—तीन वज्रयोगिनियों द्वारा सिद्धि देने पर भी तुमने नहीं स्वीकार की। अतः तुम इस जीवन में सिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकते हो—लेकिन अन्तर्भव में सिद्धि प्राप्त करोगे। इसके लिये तुम्हें साधना की अपेक्षा शास्त्रों की रचना और देशना करनी चाहिये। गुरु की आज्ञानुसार इन्होंने नालन्दा, विक्रमशिला आदि में जाकर अध्यापन का कार्य किया और वहाँ के उपाध्याय नियुक्त हुए। बाद में राजा रामपाल की रानी ने एड़ापूर नामक बिहार बनाकर उन्हें भेट किया, वहाँ भी वे काफी समय तक साधना करते रहे। इनके शिष्यों में शुभाकर गुप्त प्रमुख थे। अभयाकर गुप्त के नाम से तन्युर में 22 ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

(1) 1499 अभिषेकप्रकरण
(2) 1500 स्वाधिष्ठानक्रमोपदेश
(3) 1654 श्रीबुद्धकपालमहातन्त्रराजटीका-अभयपद्धतिनाम
(4) 2484 वज्रयानापत्तिमञ्जरीनाम
(5) 2491 गणचक्रविधिनाम
(6) 3140 वज्रावलीनाममण्डलविधि
(7) 3142 ज्योतिर्मंजरीनाम होमविधि
(8) 3266 उच्छुष्मजम्भलसाधन
(9) 3743 उच्छुष्मजम्भलसाधननाम
(10) 1498 श्रीचक्रसंवराभिसमय
(11) 1380 श्रीकालचक्र (उद्दान)
(12) 1198 श्रीसम्पुटतन्त्रराजटीकाम्नाय-मंजरीनाम
(13) 1383 कालचक्रावतारनाम
(14) 1618 ज्ञानडाकसाधन
(15) 1831 पंचक्रममतिटीकाचन्द्रप्रभानाम
(16) 2037 रक्तयमान्तकनिष्पन्नयोगनाम
(17) 3141 निष्पन्नयोगावलीनाम
(18) 3613 उच्छुष्मजम्भलसाधन
(19 3766 बोधिपद्धतिनाम
(20) 3805 आर्य-अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापार-मितावृत्ति मर्मकौमुदीनाम
(21) 3903 मुनिमतालंकार
(22) 3970 बोधिसत्त्वसंवरग्रहणविधि

चन्द्रगोमिन्

चन्द्रगोमिन् का जन्म पूर्वी भारत में वारेन्द्र नामक स्थान में हुआ था। ये व्याकरण, तर्क आदि सामान्य ज्ञान में बाल्यकाल में ही पारगंत हो गये थे। इन्होंने महान् आचार्य स्थिरमति से सूत्र और अभिधर्म का गहन अध्ययन किया तथा विद्या मन्त्र की साधना कर तारा और अवलोकितेश्वर का साक्षात्कार भी किया था। तत्पश्चात् राजा भर्ष के देश में वैद्यक, शिल्प और छन्दशास्त्र आदि पर कई स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना की। उसी समय उनका तारा नामक राजकन्या से विवाह हो गया। एक बार दासी द्वारा उन्हें तारा कह कर बुलाने पर चन्द्रगोमिन् के मन में विचार आया कि इष्टदेव के समान नाम वाली कन्या के साथ शादी करना उचित नहीं है। यह सोचकर वहाँ से दूर चले जाने का विचार किया, तो राजा ने उन्हें अपनी पुत्री का अपमान करने के कारण सन्दूक में बन्द कर गंगा में बहा दिया। उन्होंने भट्टारिका आर्या तारा से प्रार्थना की। सन्दूक गंगा के तटपर पहुँचा और मछुवारों द्वारा उन्हें निकाला गया। इस प्रकार उस द्वीप का नाम ही चन्द्रद्वीप पड़ा, वहाँ से वे सिंहली व्यापारियों के साथ सिंहल द्वीप भी गये। वहाँ प्रायः नाग रोग का प्रकोप होता रहता था। उन्होंने उससे रक्षा के लिये आर्य सिंहनाद का मन्दिर बनवाया, जिसके फलस्वरूप नाग रोग स्वतः शान्त हो गया। उन्होंने वहां महायान का भी उपदेश किया। उसके बाद वे वहाँ से नालन्दा वापस लौटे और वहाँ दीर्घ काल तक इनका चन्द्रकीर्ति के साथ शास्त्रार्थ हुआ। इस प्रकार यह चन्द्र-

कीर्ति के समकालीन हैं। पाणिनि के समान इन्होंने चान्द्र व्याकरण की रचना की है। तन्युर में इनके नाम से 45 ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

(1) 1159 देशनास्तव
(2) 1738 तारा-अभ्यन्तरबलिविधि
(3) 2090 आर्यमंजुश्रीनामसंगीतिनाम महाटीका
(4) 2710 भगवदार्यमञ्जुश्रीस्वाधिष्ठान-स्तुति
(5) 2720 आर्यामोघपाशपंचदेवस्तोत्र
(6) 2722 मनोहरपापविदारणनाम लोक-नाथस्तोत्र
(7) 2731 आर्यावलोकितेश्वरस्तोत्र
(8) 2732 महाकारुणिककुवाक्यस्तोत्रनाम
(9) 2858 सिंहनादसाधन
(10) 2911 आर्यविदारणमण्डलविधि
(11) 3055 हयग्रीवसाधननाम
(12) 3083 आर्यसितातपत्रापराजितानाम-साधन
(13) 3084 आर्यसितातपत्रापराजिता-बलिविधिनाम
(14) 3085 आर्यतथागतोष्णीषसितात-पत्रापराजिताप्रत्यङ्गिरा-नामधारणीसाधन
(15) 3086 रक्षाचक्र
(16) 3096 आर्यतथागतोष्णीषसितातपत्र-नामधारणीविधिनाम
(17) 3098 द्वाररक्षाविधि
(18) 3100 अभिचर्याकर्म
(19) 3101 होम
(20) 3102 dÑosGrub bsGrubPaḥi sGoNas Sriḥu gSoba.
(21) 3103 bzLog-Paḥi ZorBya Baḥi Cho ga.
(22) 3104 चैत्यसाधनविधिक्रमनाम
(23) 3115 भगवत उष्णीषविजयस्तोत्र
(24) 3329 सिंहनादसाधन
(25) 3616 संक्षिप्तश्रीजम्भलसाधन
(26) 3621 हयग्रीवसाधन
(27) 3665 अष्टशतसाधन
(28) 3666 आयुर्वर्धिनीविधि
(29) 3667 श्रीमहातारास्तोत्रनाम
(30) 3669 आर्यतारास्तोत्रकर्मसाधननाम
(31) 3670 आर्यतारादेवस्तोत्रपुष्पमाला-नाम
(32) 3671 आर्यतारादेवीस्तोत्रनाम
(33) 3672 आर्यतारा-अष्टभयत्रातनामसाधन
(34) 4081 बोधिसत्त्वसंवरविंशक
(35) 4153 लोकानन्दनाटकनाम
(36) 4183 शिष्यलेख
(37) 4242 न्यायसिद्ध्यालोक
(38) 4269 चान्द्रव्याकरणसूत्र
(39) 4270 विंशति-उपसर्गवृत्तिनाम
(40) 4271 वर्णसूत्रनाम
(41) 4386 चन्द्रगोमिप्रणिधाननाम
(42) 4427 उणादि
(43) 4428 चान्द्रोणादिवृत्ति
(44) 4458 चान्द्रव्याकरणवर्णसूत्रवृत्ति
(45) 3099 शान्तिहोम

जगदानन्द

जगदानन्द का नाम सिद्धमित्र भी है। इनका जन्म बनारस के राजघराने में हुआ। बाल्यावस्था में ही माता-पिता से धर्म-दर्शन के अध्ययन हेतु अनुमति लेकर इन्होंने बुद्धगया के आचार्य जिनदेव से भिक्षु की दीक्षा ली और उन्हीं से तन्त्र की शिक्षा-दीक्षा लेकर ओड़ियान में साधना की। तिब्बत के अनुवादक ठोफू 1198 में नेपाल में आये तो उनसे इनकी भेंट हुई और उन्होंने तिब्बत में आने के लिये निवेदन किया। तदनुसार ये तिब्बत गये और वहाँ के लोगों को इन्होंने शरण गमन से लेकर तन्त्र तक की देशना दी और सद्धर्म के प्रचार-प्रसार में लगे रहे। कहा जाता है कि इन्होंने विद्याधर को प्राप्त किया था। इस प्रकार वे आज भी दक्षिण भारत के श्रीपर्वत पर प्रत्यक्ष विराजित हैं। इनकी बृहत् जीवनी छोस ह्ब्युङ म्खस पही दगह् स्तोन में प्राप्त होती है। इनके नाम से एक ही ग्रन्थ उपलब्ध होता है—

(1) 1611 श्रीवज्रचतुष्पीठसाधननाम।

जितारि (जैतरि)

राजा वनपाल के राज्यकाल में पूर्व दिशा में वारेन्द्र में सनातन नामक राज्य था, जहाँ के ये राजपुत्र थे। राजा ने पुत्र को बचपन में ब्रह्म लिपि अध्ययन हेतु पाठशाला में भेजा तो वहाँ उन्हें सहपाठियों ने मारा और कहा कि तुम नीच कुल के हो। तुम्हारा पिता बौद्ध क्षुद्र संन्यासी को शीर्षासन पर बैठाता है और पूजा के समय बिना भेद-भाव के सबको समान रखता है। इस पर उसके पिता ने पुत्र को मञ्जुश्री का अभिषेक दिलवाकर साधना कराई और मञ्जुश्री का इन्होंने साक्षात्कार किया। ये लिपि, व्याकरण, छन्द आदि सभी विषयों में पारंगत हो गये। यह आजीवन उपासक बने रहे। इन्हें विक्रमशील का पाण्डित्य-पत्र भी प्राप्त हुआ। इन्होंनें महायान पर अनेकों ग्रन्थों की रचना की। विस्तार से इनकी जीवनी तारानाथ के भारतीय इतिहास में उपलब्ध होती है। तारानाथ ने इनको 100 के लगभग शास्त्रों की रचना करने वाला लिखा है, लेकिन वर्तमान तन्ग्युर में इनके नाम से 15 ग्रन्थ ही उपलब्ध होते हैं।

(1) 2698 अपरिमितायुःस्तोत्र
(2) 2700 अपरिमितायुर्ज्ञानविधिनाम
(3) 3063 चण्डमहारोषणसाधननाम
(4) 3123 शीतमहावनसाधन
(5) 3127 महाप्रतिसराचक्रलेखनविधि
(6) 3663 वज्रश्रृंखलासाधनोपायनाम
(7) 4006 बोध्यापत्तिदेशनावृत्तिबोधिसत्त्वशिक्षाक्रमनाम
(8) 1620 चतुष्पीठतत्त्वचतुर्थ
(9) 1273 श्रीदशक्रोधविद्याविधिनाम
(10) 2657 अक्षोभ्यसाधन
(11) 2699 आर्य-अपरिमितायुर्ज्ञानसाधन
(12) 4261 हेतुतत्त्वोपदेश
(13) 4262 धर्माधर्मविनिश्चय
(14) 4547 सुगतग्रन्थविभंगकारिका
(15) 2849 आर्यावलोकितेश्वरचिन्तामणिचक्रवर्तिसाधन

ज्ञानश्रीमित्र

'भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास' में लामा तारानाथ ने ज्ञानश्रीमित्र को मध्यवर्ती रत्नवज्र के बाद द्वितीय महास्तम्भ लिखा है। ये श्री अतिश के कृपालु गुरु थे। इनका जन्म गौड़ देश में हुआ था। पहले ये सिन्धव सम्प्रदाय के प्रकाण्ड पण्डित थे। बाद में इन्होंने महाज्ञानी आचार्य असंग और नागार्जुन के ग्रन्थों का अध्ययन किया। तन्त्र के भी ये विद्वान् थे। भगवान् शाक्यराज, मैत्रेय, अवलोकितेश्वर आदि का बार-बार साक्षात्कार करते थे। इन्होंने वज्रासन में तैर्थिकों द्वारा आग लगाये जाने को अभिज्ञा द्वारा जान कर अपने शिष्य को विक्रमशील से बुद्ध गया भेज कर गन्धोला की रक्षा की। इस प्रकार ये विद्वान् और सिद्धिलब्ध व्यक्ति थे। इनके नाम से तन्ग्युर में 10 ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

(1) 1539 सहजमण्डलत्र्यालोकनाम
(2) 2897 वज्रपाणिवज्रगर्भोपदेशसाधनोपाय
(3) 2920 वज्रविदारणकर्मचतुःसाधनहोमविधि
(4) 2921 वज्रविदारणकर्मचतुःसाधनकलशविधि
(5) 2922 वज्रविदारणकर्मचतुःसाधनचक्रविधि
(6) 2924 वज्रविदारणकर्मविविधसाधनविधि
(7) 3714 वज्रयानद्वयान्तनिवृत्ति
(8) 4031 सूत्रालंकारपिण्डार्थ
(9) 4258 कार्यकारणभावसिद्धिनाम
(10) 4305 वृत्तमालास्तुति

प्रज्ञारक्षित

तारानाथ विरचित 'भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास' के अनुसार प्रज्ञारक्षित भिक्षु थे और यह दर्शनशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होंने 12 वर्ष तक नाडपाद को अपना गुरु मानकर पितृतन्त्र और मातृतन्त्र का सूक्ष्म रूप से अध्ययन किया। विशेष कर मातृतन्त्र के ये विशेषज्ञ बने। उसमें भी चक्रसंवर पर इनको पूर्ण दक्षता प्राप्त थी। ओदन्तपुर के निकट पाँच वर्ष तक चक्रसंवर की साधना कर चक्रसंवर, मञ्जुश्री और कालचक्र आदि इष्ट देवों का इन्होंने साक्षात्कार किया। जब विक्रमशील पर तुर्कों का आक्रमण हुआ तो इन्होंने चक्रसंवरबलि बनाया। जिसके बल से आक्रामकों को पराजित किया। इनकी मृत्यु नालन्दा के निकट एक वन में हुई थी। मृत्यु से पूर्व इन्होंने अपनी अर्थी को सात दिन तक वहीं रखने को कहा था। इच्छानुसार रखे जाने पर इनका शरीर क्रमशः छोटा होता हुआ सात दिनों में पूर्ण मायागत हो गया। इनके नाम से तन्ग्युर में निम्नलिखित 5 ग्रन्थ प्राप्त होते हैं।

(1) 1465 श्रीअभिसमयनामपंजिका
(2) 1466 श्रीचक्रसंवरबहिःपूजाविधि
(3) 1467 श्रीचक्रसंवरबलिविधि
(4) 1468 श्रीचक्रसंवररहस्तपूजाविधि
(5) 1469 श्रीचक्रसंवरमण्डलविधि

विभूतिचन्द्र

12वीं सदी के आस-पास काश्मीर के महापण्डित शाक्यश्रीभद्र जो विक्रमशील के प्रायः अन्तिम उपाध्याय थे, 9 पण्डितों को लेकर तिब्बत गये थे। ये व्याकरण और अभिधर्म के प्रकाण्ड पण्डित एवं साधक भी थे। इन्होंने शबरिपा का भी साक्षात् दर्शन कर षडंगयोग का अध्ययन किया था और अमोघ को इन्होंने इसकी शिक्षा दी थी। यही षडंगयोग आगे चलकर तिब्बत में जोनङ, जोरडुग के नाम से प्रचलित हुआ। कहा जाता है कि तिब्बत में एक बार इन्होंने डिगुङ के संस्थापक को कह दिया कि धन और ऐश्वर्य में डिगुपा सम्पन्न तो हैं, लेकिन यह झूठे होते हैं। इस पर महापंडित ने कहा नागार्जुन-नागार्जुन को ऐसा नहीं कह सकते। इसी बीच डिगुङ के एक शिष्य ने इनका चीवर पकड़ कर खींचा तो प्रतीकार में जोस्नस और ञोमा से खीचाँतानी हो गयी। वे गिर गये और शरीर से खून निकलने लगा। उस दिन विभूतिचन्द्र को अपनी दैनिक पूजा में तारा का दर्शन नहीं हुआ और वे अस्वस्थ हो गये। एक दिन स्वप्न में इन्हें आदेश हुआ कि तुमने नागार्जुन के शिष्य की अवहेलना की है, अतः प्रायश्चित्त हेतु बिना चीवर के 100 भिक्षुओं को चीवर दान करो और एक मन्दिर का निर्माण करो। उसी के अनुसार इन्होंने चक्रसंवर का विहार बनवाया इस प्रकार यह तिब्बत में वर्षों रहे और त्रिसंवर की रचना कर स्वयं उसका तिब्बती में अनुवाद भी किया। इनके नाम से 4 ग्रन्थ तन्ग्युर में उपलब्ध होते हैं।

(1) 1377 अन्तरमंजरीनाम (स्वयं अनूदित)
(2) 1832 पिण्डीकृतसाधनपंजिका
(3) 3727 त्रिसंवरप्रभामाला (स्वयं अनूदित)
(4) 3880 बोधिचर्यावतारतात्पर्यपंजिका विशेषद्योतनीनाम (स्वयं अनूदित)

रत्नाकर शान्तिपा

विक्रमशील विहार के पूर्व द्वारपालक नाड़पाद आदि के समकालीन अपने ज्ञान और तर्क से बौद्ध धर्म के महान् स्तम्भ शान्तिपाद का जन्म मगध में ब्राह्मण कुल में 10वीं सदी के आस-पास हुआ था। इन्होंने बाल्यकाल में वेद-वेदान्त का सर्वांगीण अध्ययन किया था। आगे चल कर ओदन्त-पुरी विहार में सर्वास्तिवादी निकाय में दीक्षा ली और त्रिपिटकाचार्य बने। पुनः विक्रमशील जाकर जैतारि आदि विद्वानों से महायान का गहन रूप से अध्ययन किया। महास्थविर बनने पर इन्हें सोमपुरी का उपाध्याय नियुक्त किया गया। उसके कुछ साल पश्चात् इन्होंने रत्नकीर्ति, कृष्ण-समयवज्र, थगनपाद आदि से तन्त्र का अध्ययन किया और 7 वर्षों तक कठिन साधना कर तारा, मैत्रीनाथ, मञ्जुश्री आदि इष्ट देवों का साक्षात्कार किया। उसी मध्य इन्हें तारा ने सिंहलद्वीप जाने के लिए स्वप्न में आदेश दिया और उसी समय सिंहली राजा को भी स्वप्न में जम्बूद्वीप में आचार्य

रत्नाकरशान्ति नामक विद्वान् रहते हैं, उन्हें बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु सिंहल में आमन्त्रित किया जाय, ऐसा आदेश हुआ। स्वप्नानुसार आचार्य के बंगाल में निवास करते समय सिंहल के राजा ने दूत भेजा और यह महायान से सम्बद्ध 200 से भी ज्यादा सूत्र-ग्रन्थों को साथ लेकर सिंहल द्वीप के लिये रवाना हुए। वहाँ 7 साल तक रह कर महायान का प्रचार किया। 7 सालों में 700 से भी ज्यादा महायानी भिक्षु बने और सूत्र का बहुत प्रचार हुआ। उसके पूर्व सिंहल में प्रायः सिद्धपुरुष तो निवास करते थे, जैसे आर्यदेव को सिंहली माना जाता है, लेकिन प्रत्यक्ष रूप से प्रायः श्रावक ही थे। सिंहल से वापस आकर ये नालन्दा के पूर्व द्वारपालक बने। ये राजा महिपाल के समय विद्यमान थे। कुछ लोग इन्हें महिपाल के भाँजे चनक का समकालीन भी कहते हैं। इन्होंने नाड़पाद से तन्त्र का अध्ययन किया और बाद में कदलीपाद से भी अभिषेक आदि प्राप्त कर वज्र-वाराही का साक्षात्कार किया। इस प्रकार यह लगभग 108 साल तक जिये थे। इनके नाम से तन्ग्युर में 22 ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

(1) 1245 भ्रमहारसाधन
(2) 1246 सहजयोगक्रमनाम
(3) 1324 वज्रतारासाधन
(4) 1424 खसमानामटीका
(5) 1935 कृष्णयमारिसाधनप्रोत्फुल्लकुमुदनाम
(6) 1643 महामायासाधन
(7) 1826 पिण्डकृतसाधनवृत्तिरत्नावलीनाम
(8) 1871 श्रीगुह्यसमाजमण्डलविधिटीका
(9) 2476 अभिषेकनिरुक्ति
(10) 2623 श्रीसर्वरहस्यनिबन्धरहस्यप्रदीपनाम
(11) 3126 पंचरक्षाविधि
(12) 3490 वज्रतारासाधन
(13) 3712 त्रियानव्यवस्थाननाम
(14) 3807 अभिसमयालंकारकारिकावृत्ति शुद्धामति
(15) 3803 आर्य-अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमितापंजिकासारोत्तमानाम
(16) 3935 सूत्रसमुच्चयभाष्यरत्नालोकालंकारनाम
(17) 4072 माध्यमिकालंकारवृत्तिमध्यमप्रतिपदासिद्धिनाम
(18) 4076 प्रज्ञापारमिताभावनोपदेश
(19) 4085 माध्यमिकालंकारोपदेश
(20) 4259 विज्ञप्तिमात्रतासिद्धिनाम
(21) 4260 अन्तरव्याप्ति
(22) 4303 छन्दोरत्नाकरनाम

रत्नाकर गुप्त

अतिश के समकालीन विक्रमशील के उपाध्याय मध्यम वज्रासनपाद के शिष्य रत्नाकर गुप्त का जन्म पूर्व में गौड़ देश में हुआ था। ये ब्राह्मण जाति से सम्बद्ध थे। बचपन से ही बौद्ध धर्म में प्रवेश कर अध्ययन द्वारा पारंगत हुए। यद्यपि ये उपासक ही थे, लेकिन इनके शिष्यों में ज्यादातर

भिक्षु थे। इनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर मध्यदेश के राजा ने इन्हें भिक्षु बनने के लिए कहा पर 'वृद्ध माता की सेवा हेतु मैं भिक्षु नहीं बन सकता' यह कहने पर राजा ने माता की सेवा हेतु आर्थिक सहायता दी और ये विक्रमशील विहार में भिक्षु बन गये। वहाँ पर मध्यम वज्रासनपाद से सम्पूर्ण दर्शन का अनुशीलन कर दुर्धर पण्डित बने और कई साल तक विक्रमशील के उपाध्याय भी रहे। उसके पश्चात् यह 30 के लगभग शिष्यों को लेकर सौराष्ट्र की ओर गये। सौराष्ट्र के राजा को उनके आगमन पर स्वप्न में बुद्धगया के महाबोधि मन्दिर का दर्शन हुआ। इसे राजा ने शुभ लक्षण मानकर उनका सेवा सत्कार किया और ये वहीं पर रहने लगे। इससे इनका नाम सौरिपा भी पड़ा। इन्होंने उत्पत्तिक्रम पर दक्षता प्राप्त की और इष्टदेव का साक्षात्कार कर सिद्धि प्राप्त की। इनके शिष्यों की परम्परा इस प्रकार है—रत्नाकर गुप्त = अभयाकर गुप्त = शुभाकर गुप्त = कीर्तिधर्मभद्र = बुद्धभद्र = रत्नकीर्ति = रतिगुप्त आदि। इनके नाम से 4 ग्रन्थ तन्ग्युर में उपलब्ध होते हैं।

(1) 2541 आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिपंजिका-संग्रहनाम
(2) 3147 त्रिसमयसमयसाधन
(3) 3401 त्रिसमयराजसाधन
(4) 3764 मण्डलविधि

रामपाल

मैत्रीपाद के शिष्यों में सर्वश्रेष्ठ रामपाल का जन्म दक्षिण भारत में कर्नाटक प्रान्त में क्षत्रिय जाति में हुआ था। इन्होंने बाल्यकाल से ही पाँच विद्याओं का गहन रूप से अध्ययन किया और बाद में 12 वर्ष तक मैत्रीपाद को अपना गुरु स्वीकार कर तन्त्र का अध्ययन करके दक्षिण भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार किया। महाकृष्णपाद ने भी इन्हें खड्गसिद्धि प्रदत्त की और शरीर को त्यागे बिना असुरों के कल्याणार्थ ये असुर लोक चले गये। कुशलभद्र और अस्तिधन आदि ने इनसे महामुद्रा का उपदेश सुना। इनके नाम से तन्ग्युर में एक ग्रन्थ मिलता है।

(1) 2253 सेकनिर्देशपंजिका

राहुलभद्र (वज्र)

तारानाथ के अनुसार इनका जन्म क्षत्रिय कुल में हुआ था। ये बचपन में मन्द बुद्धि वालों में गिने जाते थे। आचार्य ने इन्हें गुह्यसमाज का अभिषेक दिया और ये पश्चिम सिन्धु में किसी एक नदी के तट पर जाकर गुह्यसमाज की भावना करने लगे। इन्हें पाँच तथागत कुलों का साक्षात्कार भी हुआ था। इन्होंने तमिल देश में जाकर नागों से धन प्राप्त कर अनेकों विहारों का निर्माण करवाया। इन्हें इसी शरीर में विद्याधर की सिद्धि प्राप्त हुई। कहा जाता है कि नागों के विनती

करने पर वे समुद्र में नागदेश जाकर आज भी वर्तमान हैं। तिब्बती तन्ग्युरमें राहुलभद्र का लिखा एक ही ग्रन्थ उपलब्ध होता है।

(1) 3965 बोधिसत्त्वगोचरपरिशुद्धिसूत्रार्थसंग्रह

शाक्यरक्षित

शाक्यरक्षित का जन्म सिंहल द्वीपमें हुआ था। ये बचपनमें श्रावक सैन्धव थे और इस मत के प्रकाण्ड पण्डित बने। कुछ काल पश्चात् र-खङ देश के अन्तर्गत हरिपुंज नामक स्वर्णनगर में आचार्य धर्मश्री से प्रज्ञापारमिता और तन्त्र का अध्ययन किया। विशेष कर हेवज्र, चक्रसंवर, तारा और महाकालतन्त्र के विज्ञ बने। हेरुक का इन्होंने प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया। एक समय महाकाल के उपासक चगलराज नामक राजा ने, जो सौ योजन तक की किसी भी वस्तु को अपने वश में कर सकता था, हरिपुंज को जीत कर वहाँ के सभी मन्दिरों को नष्ट करना चाहा, तो शाक्यरक्षित ने महाकाल के हस्तायुध (त्रिशूल) को फेंका, जो एक महीने के रास्ते को लाँघते हुए राजा के दरवार पर गिर कर उसे नष्ट कर दिया।

इस प्रकार ये एक शक्तिलब्ध सिद्धपुरुष थे। इनके नाम से एक ग्रन्थ तन्ग्युर में उपलब्ध होता है।

(1) 1215 प्रतिष्ठाननिर्णय

सूर्यगुप्त

चन्द्रगोमी के समकालीन कश्मीर में पैदा हुए सूर्यगुप्त को सात जन्म-जन्मान्तरों में तारा का साधक माना जाता है। बाल्यावस्था में ही ये तीक्ष्ण बुद्धि वाले तथा पाण्डित्य से विभूषित थे। इन्होंने नागार्जुनपद्धति को स्वीकार कर सूत्रपर्यन्त में दक्षता प्राप्त की थी। आचार्य नागमित्र से इन्होंने तारा का अभिषेक प्राप्त कर तारा से सम्बद्ध 108 तन्त्रों में विद्वत्ता प्राप्त की और तारास्तोत्र तन्त्र के आधार पर साधनाविधि और मण्डलविधि आदि कई स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना की। इनके शिष्यों में सर्वज्ञमित्रबन्धु आदि प्रमुख हैं। इनके नाम से तन्ग्युर में 8 ग्रन्थ हैं।

(1) 1689 देवीतारैकविंशतिस्तोत्रविशुद्ध-चूड़ामणिनाम
(2) 1685 तारादेवीस्तोत्रैकविंशतिक-साधननाम
(3) 1686 भट्टारिका-आर्यतारैकविंशकर्माव-यवसहितसाधनोपायसूत्रसंग्रहनाम
(4) 1693 आर्यतारास्तोत्र
(5) 1687 तारासाधनोपदेशक्रम
(6) 4224 प्रमाणवार्त्तिकवृत्तिनाम
(7) 4225 प्रमाणवार्त्तिकटीकातृतीय-परिवर्त
(8) 4331 कारिकाकोष

ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པའི་བསྟོད་པ། (༡–༣)

བསྟོད་པ་འདི་དཔལ་འཇིག་རྟེན་མགོན་པོ་ (ཛགནྣཐ) མཆོག་གི་སྐུ་སྐེར་དཔེ་མཛོད་ནང་དེ་སྔ་པར་བསྐྲུན་མ་བྱུང་བའི་བསྟོད་པ་ཕྱོགས་བསྡུས་སྡེ་ཚན་གྱི་ཤོག་གྲངས་…… ༨༦–༨༨ དང་བསྟོད་རིམ་ཨང་གྲངས་ ༩༨ ནས་བྱུང་བཀོལ་བྱས་པ་ཞིག་རེད། ཕྱོགས་བསྡུས་འདིའི་སྐོར་དུས་དེབ་དང་པོའི་ཤོག་གྲངས་ ༤༡ ནང་གསལ་ཡོད།།

འཕགས་མ་དཔལ་ས་འཛིན་མ་ཞེས་བྱ་བའི་གཟུངས་ཀྱི་བསྟོད་པ། (༢–༨)

བསྟོད་པ་འདི་ཡང་གོང་སྨོས་ལྟར་འཇིག་རྟེན་མགོན་པོ་མཆོག་གི་དཔེ་མཛོད་ནང་བསྟོད་པ་ཕྱོགས་བསྡུས་ཀྱི་བསྟོད་གྲངས་ ༡༡༨ དང་ཤོག་གྲངས་ཨང་རིམ་ ༡༡༠–༡༡༣ ནས་བྱུང་སྟོན་ཞུས་པ་ཞིག་རེད། ཕྱོགས་བསྡུས་འདིའི་སྐོར་ཡང་དུས་དེབ་དང་པོའི་ཤོག་གྲངས་ ༤༡ ནང་གསལ་བཤད་ཞུས་ཟིན།།

ཆོས་དཀོན་པའི་དཔེ་དེབ་ཁག་གི་ངོ་སྤྲོད། (༤–༢༨)

ཊོམཱབིཧེཏྲཀའི་ལྷན་སྐྱེས་གྲུབ་པའི་ ༢༨ ནང་བླ་མས་སློབ་མའི་ཁམས་དང་མོས་པ་བསམ་པ་དང་། དེ་བཞིན་ཕྱིའི་ཡུལ་དུས་དང་བསྟུན་ནས་གནང་བའི་ཐུན་མིན་གྱི་སྤྱོད་པའི་མན་ངག་བསྟན་པ་དེ་ལ། འདིར་སྤྱོད་པ་ཞེས་བརྗོད། སྤྱོད་གླུ་འདི་རྣམས་ནང་པའི་རྒྱུད་དོན་ལ་ཤིན་ཏུ་མཁས་པའི་སྐྱེས་བུ་རྣམས་ཀྱིས་འཇིག་རྟེན་ཕལ་སྐད་དུ་རྔཱ་དང་ཌཱ་ལ་སོགས་དང་བསྒྲིག་ནས་རྩོམ་གནང་ཡོད། སྤྱོད་གླུ་འདི་རྣམས་སྒྲུབ་པའི་ཡན་ལག་ཏུ་བཞེད་དེ་ཉམས་ལེན་དང་སྦྱོར་བར་མཛད།།

སྐབས་འདིར་སྤྱོད་སླུ་ཕྱོགས་བདུས། ཙརྱཱ་ཡུསྟཀ། ཙརྱཱ་སྒྲཱིཔ་ཞེས་པའི་སྤྱོད་པ་ཕྱོགས་བདུས་གསུམ་གྱི་སྐོར་བཀོད་ཡོད། སྤྱིར་ཙརྱཱ་འདི་རྣམས་འཛིག་རྟེན་པལ་སྐད་དུ་ཡོད་པའི་སླུ་ལྟར་སྣང་ནའང་། ཉམས་ལེན་ཤིན་ཏུ་ཟབ་པ་དང་། གསང་བའི་སྔགས་རྣམས་ཀྱང་སྤྱོད་སླུ་འདར་བསྡུས་ཏེ་བསྟན་ཡོད། སླུ་འདི་རྣམས་བླ་མའི་མན་ངག་ལ་བརྟེན་ནས་གོ་རྟོགས་དགོས།།

ནང་པའི་གསུང་རབ་ཉམས་པ་ཕྱོགས་བདུས། (༣༤–༩༧)

འགོ་བརྗོད་འདི་ཐོག་དུས་རབ་དང་པོར་གཉིས་མེད་རྡོ་རྗེའི་ཕྱོགས་བདུས་སོགས་གཞུང་ཚན་ལྔར་དྲངས་པའི་ལུང་དང་། དེ་བཞིན་མཛད་པ་པོའི་གལ་ཆེའི་མཚན་བྱ་དང་བཅས་བཀོད་ཡོད་པ་ལྟར། འདིར་ལེགས་བཤད་ཕྱོགས་བདུས་དང་། སྒྱུ་འཕྲུལ་ཆེན་མོའི་འགྲེལ་བ་ཡོན་ཏན་ལྡན་པ། སྤྱོད་པ་བསྡུས་པ། རྡོ་རྗེའི་འཕྲེང་བ། གསང་བའི་དམ་ཚིག་སྒྲུབ་པ་རྣམས་སུ་དྲངས་པའི་ལུང་རྣམས་དང་། སློབ་དཔོན་ཆེའི་གསུང་རྣམས་ཕྱོགས་བདུས་བྱས་ཡོད།།

ནང་པའི་ཐུན་མོང་མིན་པའི་ཆོས་ཚིག་ཁག་གི་དགོངས་པ། (༩༨–༡༩)

འཆར་གཞི་འདིའི་ངོ་བོ་དུས་རབ་དང་པོར་བཀོད་ཟིན་ལ། སྐབས་དེར། དབང་མདོར་བསྟན་དང་། གཉིས་མེད་རྡོ་རྗེའི་ཕྱོགས་བདུས་ནང་གསལ་བའི་ཐུན་མིན་ཆོས་ཚིག་ཁག་གི་དགོངས་པ་ཕྱོགས་སྒྲིག་བྱས་ཏེ་བཀོད་ཡོད། འདིར་ཡང་སྒྲུབ་ཐབས་འཕྲེང་བ། དེ་ཁོ་ན་ཉིད་ཡེ་ཤེས་ཡང་དག་པར་སྒྲུབ་པའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་བ་དེ་ཁོ་ན་ཉིད། དོ་ཧ་མཛོད་ཀྱི་འགྲེལ་བ་དང་། སྤྱོད་སླུའི་མཛོད་ཀྱི་འགྲེལ་བར་གསལ་བའི་ཐུན་མིན་ཆོས་ཚིག་ཁག་གི་དགོངས་པ་རྣམས་བཀོད་ཡོད།།

གནས་དང་ཉེ་གནས་ཀྱི་སྐོར། (༦༤–༦༩)

གནས་རྣམས་ཀྱི་སྐོར་ཐོས་བསམ་བྱེད་པ་ལ་ངེས་དགོས་པ་ཞིག་ལ། ཛཱ་ལྡྷར་ཕྱི་རོལ་དུ་པུ་རི་སོགས་གནས་ཉེར་བཞིའི་རྣམ་གཞག་བྱེད་པ་ལྟར། གནས་དེ་རྣམས་རང་ལུས་དཀྱིལ་འཁོར་དུ་ཡང་གནས་པའམ་ཚང་ཡོད་པ་ཤེས་དགོས། གནས་དེ་དང་དེར་སྡུག་བསྔལ་ཤེས་པ་སོགས་ཡེ་ཤེས་བཅུ་དང་། རབ་ཏུ་དགའ་བ་ལ་སོགས་པ་ས་བཅུ། དེ་བཞིན་མཁའ་འགྲོ་དང་། དཔའ་མོ། སྦྱིན་སོགས་བཅུ་རྣམས། ལུས་ངག་ཡིད་གསུམ་གྱི་འཁོར་ལོ་ཙཀྲའི་རྣམ་པར་ཕྱེས་ཏེ། དེ་བཞིན་འཁོར་ལོ་རེ་རེར་དེ་རྣམས་སྒོམ་པར་བྱེད། སྐབས་འདིར་ལུས་ངག་ཡིད་ཀྱི་འཁོར་ལོ་གསུམ་གྱི་ངོ་བོ་དང་དེའི་རིའུ་མིག་ཀྱང་བཀོད་ཡོད།།

ནང་པའི་རྒྱུད་གཞུང་རྣམས་སུ་གསལ་བའི་ཕྱག་རྒྱ་འགའ་ཞིག (༧༠–༨༧)

འགོ་འཇོད་འདི་ཐོག་དུས་རིམ་དང་པོར་སྒྲུབ་ཐབས་འཕྲེང་བ་དང་། རྣལ་འབྱོར་ནམ་མཁའི་རྒྱུད་དང་། ཕྱི་རོལ་པའི་གཞུང་ཤཱརདཱཏིལཀ་དང་པརཤུརཱམཀལྤ་ནས་ཕྱག་རྒྱ་མི་འདྲ་བ་ ༡༣༣ ཙམ་གྱི་མཚན་ཉིད་བཀོད་ཡོད་པ་ལྟར། འདིར་བསྒྱུར་དུ་འཛམ་དཔལ་ཙ་རྒྱུད་ནང་གསལ་བའི་ཕྱག་རྒྱ་མི་འདྲ་བ་བརྒྱད་ཅུ་རྩ་བརྒྱད་ཀྱི་མཚན་ཉིད་དང་……། མཚན་ཉིད་དེ་དག་གི་ཤོག་གྲངས་ཨང་རིམ་རྣམས་མིཐིལཱ་བིདྱཱཔཱིཋ་དརབྷཾགཱ་(བིཧཱར) ནས་ ༡༩༦༨ ལོར་པར་ཐེངས་གཉིས་པར་འཁོད་ཡོད་པའི་ཤོག་གྲངས་རྣམས་འདིར……བཀོད་ཡོད།།

ཉང་པ་དང་དབང་ཕྱུག་པ་དང་ཉུས་མ་པའི་ (༤༣༥) ཞུགས་ཀྱི་གཞུང་དོན་ཐན་ཚུན་འདྲ་སྡུར་དཔྱད་གཞི། (༨༨–༩༦)

འགོ་བརྗོད་འདི་ནང་དུས་རིབ་དང་པོར་ལུང་གྲངས་བཅུ་བདུན་ཙམ་གྱི་ཕྱོགས་བསྡུས་ཡོད་པ་བཞིན། འདིར་ཡང་སྔ་མའི་ལུང་ཨང་གསུམ་པ། བཞི་པ། དྲུག་པ། དགུ་པ། བཅུ་གསུམ་པ་དང་བཅུ་བདུན་པ་དང་འབྲེལ་ཡོད་ལུང་གཞན་ཁ་ཤས་ཕྱོགས་བསྡུ་བྱས་པའི་ཐོག་སུ་མཐུད་ཨང་བཅོ་བརྒྱད་ནས་ཉི་ཤུ་རྩ་བརྒྱད་བར་བརྗོད་བྱ་གསར་པ་གཞན་གྱི་སྣོན་མ་བྱས་ཡོད།།

ལུང་གསུམ་པའི་དོན་སྔར་བཀོད་པ་དང་མཐུན་པར་འདིར་རིག་བྱེད་ཀྱི་གཞུང་ཧྲྀདྡལ་པདེ་ཤ་ཡེ་ལུང་ལས་སྲུང་འདས་བདེ་ཆེན་གྱི་ངོ་བོ་ཡིན་པར་རིག་བྱེད་ཀྱི་གཞུང་དང་རྒྱུད་གཉིས་ཀ་མཐུན་པར་གསལ། ལུང་བཞི་པར་མཎྜཱུ་རདའི་ལུང་ལས་མཱརཀྚཱཊེཤྲུརྚཱ་དང་མཚུངས་པར་འདིར་ཡང་དྲང་སྲོང་གནས་ངན་ལེན་ལ་ཡང་སྨྲོན་པའི་ཚིག་གིས་ཁྱད་པར་དུ་བྱས་ཡོད་པར་ཤེས་ཐུབ། ལུང་དྲུག་པར་རླུག་ཞེས་པའི་སྒྲ་དབང་མདོར་བསྟན་དང་ཁྱབ་འཇུག་གི་སྟོན་རབ་ཀྱི་འཆད་སྲོལ་དེ་ལས་གཞན་པ་ངེར་འགྲེལ་བཤད་གསར་པ་ཡང་བཀོད་ཡོད། ལུང་དགུ་པ་དང་ཨལོཀམལར་སྟོན་དུ་དྲངས་ཡོད་པའི་ལུང་གཉིས་ཀྱི་མཇུམ་དུ་ཤློཀ་གཉིས་དྲངས་ཡོད།།

ལུང་བཅུ་བདུན་པའི་ཀང་པ་ཐ་མར་འབྱུང་བ་བཞི་ཁོ་ནའི་རང་བཞིན་མ་གདོགས་ནམ་མཁའི་རང་བཞིན་ཁས་མི་ལེན་པའི་ཚུལ་རྒྱང་འཕེན་པ་དང་སྔོན་དུས་ཀྱི་ནང་པ་རྣམས་ཀྱི་འདོད་ཚུལ་བཀོད་ཡོད། འདིར་ལུང་ཉི་ཤུ་རྩ་ལྔ་པར་གསལ་བའི་བཟའ་བར་བྱ་བ་དང་བཟའ་བར་མི་བྱ་བ་དང་བཏུང་བྱ་དང་བཏུང་བྱ་མིན་པའི་སྐོར་དང་། ལུང་དང་པོ་གཉིས་

ཀས་ལུང་གྲངས་ཉི་ཤུ་རྩ་གཉིས་པར་བསྟན་པའི་མཆོད་པའི་ཡན་ལག་ལྔའི་སྐོར་འགྲེལ་······
བཤད་བྱས་ཡོད། ལུང་བཅོ་བརྒྱད་པར་ཁ་ཆེ་དབང་ཕྱུག་པའི་ལུགས་ནང་གསལ་བའི་རྩ་
དབུ་མའི་གནས་སྟངས་དང་དེའི་འཕེལ་རྒྱས་ཀྱི་ཚུལ་བཤད་པ་ཉུང་བསྡུས་ཤིག་ཡོད། ལུང་
བཅུ་དགུ་པར་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་ཀྱི་དོན་རྟོགས་ང་ལ་ངེས་པར་དཀྱིལ་འཁོར་ལ་བརྟེན་མི་དགོས···
པ་དང་། ལུང་ཉི་ཤུ་པར་ཀྱི་རྗོར་དང་སྭཙྪནྡནནྡའི་ཀྵེམཀཔྲཀཤཔཊལ་ནང་དགོངས་
པ་མཐུན་པའི་ཚིགས་བཅད་འགའ་ཞིག་བཀོད་ཡོད། འདིར་བརྗོད་བྱ་མཚུངས་པ་
གཞན་རྣམས་ཀྱང་མ་འོངས་པར་རིམ་གྱིས་ཕྱོགས་བསྡུ་བྱེད་རྒྱུ་ཡིན། ལུང་ཉི་ཤུ་རྩ་
གཅིག་པ་ནི་དེབ་དབ་གཉིས་སུ་སྔ་ཕྱི་མཐུན་པར་འདུག་ཅིང་། ཚིགས་བཅད་གསུམ་པའི་
ཕྱེད་ཀྱི་དགོངས་པ་ཡང་སྔར་དང་མཚུངས་། ལུང་ཉི་ཤུ་རྩ་གཉིས་པར་མཆོད་པའི་ཡན་
ལག་ལྔའི་སྐོར་ཕྱོགས་བསྡུས་བྱས་ཡོད། མཆོད་པ་འདི་རྣམས་བྷཊྚཊཀཀྲྀཥྞར་ནང་གི་
མཆོད་པའི་ཚུལ་དུ་འགྲེལ་བ་གནང་འདུག ནང་པའི་སྔགས་གཞུང་རྣམས་སུ་ཡན་ལག་
རྣམ་བདུན་གྱི་མཆོད་པ་བླ་ན་མེད་པའི་སྐོར་བཤད་ཚུལ་འདི་ལྟ་བུ་གནང་འདུག སྒྲུབ་
ཐབས་འཕྲེང་བ་ཤོག་གྲངས་བདུན་པའི་ནང་དྲི་དང་། མེ་ཏོག་དང་། གདུག་སྤོས་དང་།
མར་མེ་དང་། ཞལ་ཟས་དང་འབྲེལ་བའི་སྔགས་རྣམས་ཕྱོགས་བསྡུས་བྱས་འདུག ལུང་
ཉི་ཤུ་རྩ་གསུམ་པར་ཚད་མེད་བཞིའི་མིང་གིས་བསྟན་པའི་དོན་རྣམས་པཏཉྫ་ལི་ཡོགསཱུཏྲ······
དང་གཅེར་བུ་པའི་གཞུང་ཏཏྟྭཝཻཤཱརདཱི་ནང་དུ་ཡང་གསལ། ལུང་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་པར་
བརྗོད་བྱའི་བཤད་པ་མེད་པར་རྩོམ་ག་ཤིས་ཀྱི་སྐོར་བསྟན་འདུག དཔེར་ན་ཀྱི་རྗོར་
ནང་གྲངས་ལྔ་ཞེས་བརྗོད་པ་ལ་བརྩ་ཡི་ཕྱེད་ཅེས་བྱུང་བ་ལྟར་ནི་ཏཻཏྟིརཱིཡཤིཀྵཱཊཱིཀཱ་ཀྱི······
ཤབནཏདས་མཛད་པ་རཛྫཝིམསྲིནའི་འགྲེལ་བར་དྲུག་ཅེས་བརྗོད་པ་ལ་བརྩ་གཉིས་ཀྱི·····

ཕྱེད་ཀ་ཞེས་བྱུང་། དེ་བཞིན་ཤིང་ནང་དུ་ཡང་གསུམ་བརྗོད་པ་ལ་དྲུག་གི་ཕྱེད་ཅེས་བྱུང་། ལུང་འདི་ཤུ་ཙ་ལྔ་པའི་ནང་བསྡུས་པའི་བརྗོད་བྱའི་སྐོར་གོང་དུ་བཀོད་ཟིན་པ་ལྟར་ཡིན། དེ་ཁོ་ན་ཉིད་སྒོམ་པའི་རྣལ་འབྱོར་པ་ལ་དགག་པ་དང་སྒྲུབ་པ་འདི་ཡིན་འདི་མིན་གཉིས་སུ... ཁ་ཅོན་གཅོད་པའི་མཚན་ཉིད་བཞག་མི་ནུས་ཞེས་མཱལཱིཝི་ཛྙ་ཡར་གསལ། འདི་དང་མཚུངས་པར་ནང་པའི་གཞུང་དུ་མར་བསྟན་ཡོད་པ་རྣམས་དུས་རབ་གཉིས་པའི་གསུང་...... རབ་ཉམས་པ་ཕྱོགས་བདུས་ཞེས་པའི་འགོ་བརྗོད་ནང་ཤོག་གྲངས་ ༣༡༣–༣༡༧ བར་དུ་གསལ་པོར་བཀོད་ཡོད་པས་དེར་གཟིགས་པར་ཞུ། ལུང་གྲངས་འདི་ཤུ་ཙ་བདུན་ཙ་བརྒྱད་བར་དུ་སྔ་རྗེས་མཚུངས་པའམ་བརྗོད་བྱ་མཚུངས་པའི་ལུང་རྣམས་ཕྱོགས་བསྡུས་ཟིན་ཡོད།།

ཆེས་དཀོན་པའི་གསུང་རབ་རྣམས་ཀྱི་མ་དཔེ། (༨༧–༡༡༣)

འགོ་བརྗོད་འདི་ཐོག་དུས་རབ་དང་པོར་གཞུང་འདི་ཤུ་ཙ་བརྒྱད་དང་། གཉིས་པར་བཅུ་དྲུག་བཅས་ཁྲིན་བསྒོམས་གཞུང་བཞི་བཅུ་ཞེ་བཞི་རྣམས་ཀྱི་རྩ་བའི་མ་དཔེའི་སྐད་རིགས་གང་དང་ས་གནས་གང་དུ་བཞུགས་ཡོད་པའི་སྐོར་གསལ་བཤད་བྱས་ཡོད་པ་ལྟར། མུ་མཐུད་དེ་འདིར་ཡང་གཞུང་གྲངས་སུམ་ཅུ་རྩ་གཉིས་ཀྱི་མ་དཔེའི་སྐོར་དང་། ཁྱད་པར་དུ་འདིར་གཞུང་འདི་རྣམས་ལས་རྒྱ་ནག་དང་། ཉི་ཧོང་གི་སྐད་ཐོག་སྒྱུར་ཡོད་པའི་གཞུང་འགའ་ཞིག་གི་ཐོ། རྨོན་ཡི་གེའི་ནང་བཀོད་ཡོད། སྐད་དེ་གཉིས་སུ་འགྱུར་མ་འགྱུར་གྱི་ཐོ་འཁོད་མེད་པ་རྣམས་ཀྱང་རིམ་གྱིས་གནས་ཚུལ་རྣམས་ར་འཕྲོད་བྱུང་སྐབས... འགོད་རྒྱུ་ཡིན།།

འཇམ་དཔལ་མཚན་བརྗོད་ཀྱི་ཐོས་ངེསམ་ལ་སྐྱན་པའི་གདམ། (༡༡༨–༡༨༠)

འགོ་བརྗོད་འདིའི་ནང་གསང་སྔགས་ཀྱི་ཆོས་འཁོར་གང་དུ་སྐོར་བ་དང་། གསུང་བ་པོའི་སྐོར་མཁས་པ་རྣམས་ཀྱི་བཞེད་སྲོལ་འདྲ་མིན་དང་། ཐེག་པ་ཆེ་ཆུང་སྣ་ཚོགས་གསུང་དགོས་པའི་རྒྱུ་མཚན་རྣམས་གསལ་བཤད་བྱས་ཡོད། ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་མདོ་ཕལ་ཆར་འདི་སྐད་བདག་གིས་ཐོས་པ་དུས་གཅིག་ན། ཞེས་སོགས་ཚིག་གིས་དྲངས་དེ་བཀའ་བསྡུ་མཛད་ཡོད་ལ། རྒྱུད་གཞུང་འགའ་ཞིག་མ་གཏོགས་ཕལ་ཆེ་བ་རྣམས་ཀུང་གོང་དང་མཐུན་པར་བསྡུས་ཡོད། གཞུང་འགའ་ཞིག་ནང་། འདི་སྐད་བདག་གིས་ཞེས་སོགས་ཀྱི་ཚིག་ཐོག་མར་སྦྱོར་མེད་ནའང་དེའི་དོན་ངེས་པར་བསྟན་ཡོད་པར་འགྲེལ་བྱེད་མཁན······ རྣམས་ཀྱི་གསུངས། འཇམ་དཔལ་མཚན་བརྗོད་འདིར་ཡང་། དེ་ནས་དཔལ་ལྡན་རྡོ་རྗེ་འཆང་། ཞེས་པའི་ཚིག་རྐང་འདྲེས་འདི་སྐད་བདག་གིས་སོགས་ཀྱི་ཚིག་གི་དོན་བསྟན་ཡོད་ཅེས་ཉི་མའི་དཔལ་གྱིས་གསུངས་པ་ལྟར་འདིར་བཤད་ཡོད།

གཞུང་འདིའི་འགྲེལ་བ་གསུམ་རྩ་བའི་མ་དཔེ་ལེགས་སྦྱར་ནང་ཐོབ་ནའང་། མཛད་པ་པོའི་སྐོར་གསལ་པོར་བཤད་པ་ཤིན་ཏུ་ཉུང་བས་གནས་ཚུལ་ཇི་འབྱོར་ལ་གཞི་བྱས་དེ་· སློབ་དཔོན་དེ་དག་གི་རྣམ་ཐར་དང་། མཛད་པ་དང་བརྒྱུད་པ་སོག ·ཀྱི་སྐོར་མདོར་བསྡུས་བཀོད་ཡོད། །གཞུང་འདིའི་རྩ་བའི་མ་དཔེ་དཔྱིའི་ལོ་མ་དང་། ཤོག་བུའི་ཐོག་ཡུལ་གྱུ་མང་པོའི་སྐོར་དང་སྤྱིའི་དཔེ་མཛོད་ནང་ཐོབ་ཀྱི་ཡོད་ནའང་དེ་དག་གི་སྐོར་ཆ་ཚང་འདིར······ འགོད་མ་ཐུབ་ཅིང་། ངོ་འཕྲོད་བྱུང་བ་རྣམས་གང་ཐུབ་བཀོད་ཡོད།

ནང་པའི་རྒྱུད་གཞུང་རྣམས་སུ་གསལ་བའི་ཐིག་ལེའི་སྐོར། (༣༨༡–༡༤༣)

དུས་རབ་དང་པོ་དང་གཉིས་པ་གཉིས་སུ་རྩ་རླུང་སྐོར་བཀོད་ཡོད་པ་ལྟར། འདིར་

ཁྲིམས་ལྟ་བུའི་རྩ་དང་། བདག་པོ་ལྟ་བུའི་རླུང་ལ་རྟེན་ཏེ། མ་དག་པའི་ཐིག་ལེ་གང་
དུ་གནས་པ་དང་། ཇི་ལྟར་རྒྱ་བའི་ཚུལ་རྣམས་བརྗོད་པ་ལ། རྩ་བའི་སྦྱོར་གྲོལ་གྱི་ཐིག
ལེ་དང་། སེམས་ཀྱི་ངོ་བོ་མི་ཤེས་པ་ལ་བརྟེན་ནས་འཁྲུལ་པའམ་མི་ཤེས་པའི་ཐིག་ལེ་
དང་། དེའི་འཆིང་བྱེད་ཀྱི་རྒྱུ་འབྱུང་གྱུར་གྱི་ཐིག་ལེ། ཐུགས་ཀྱི་ཐིག་ལེ་དང་རླུང་གི་ཐིག
ལེ་གསུམ་གྱི་སྐོར་བཤད་པའི་སྒོ་ནས་གསལ་བཤད་བྱས་ཡོད། ཁམས་ལྔའི་བདག་ཉིད་ཅན་
གྱི་འབྱུང་བའི་ཐིག་ལེ། རྣམ་པར་བརྟགས་པ་ཐུགས་ཀྱི་ཐིག་ལེ། གཞན་དབང་རླུང་གི
ཐིག་ལེ་གསུམ་པོ་འདི་རྣམས་གཞིའི་སྐབས་ཐིག་ལེ་གསུམ་པོ་ལྷན་སྐྱེས་ཀྱི་མ་རིག་པའམ་
རྟེན་འབྲེལ་གྱི་སྐྱེ་བ་དང་ལྷན་ཅིག་རྟེན་བརྟེན་པའི་འབྲེལ་བའམ་འདྲེས་པའི་ཚུལ་གྱི་འཛིན་
པ་དང་བཅས་ཏེ་བྱུང་བའི་མ་དག་པའི་རང་རིག་སྐྱེ་བར་འགྱུར་ལ། རྒྱུ་མཚན་དེ་ལ་
རྟེན་ནས་འདི་ལ་འཁོར་བའི་སྐྱོན་རྣམས་འབྱུང་བར་འགྱུར་བའི་གཞི་འམ་བརྟེན་ཞེས་བརྗོད།
ལས་གང་གིས་སེམས་ཅན་རྣམས་འཆིང་བར་འགྱུར་བ་དེ་ལ་བླ་མའི་མན་ངག་ལ་བརྟེན་ནས་
ཡང་དག་པར་བཟུང་ན་འདི་རང་འཁོར་བའི་གཉེན་པོ་ཡང་འགྱུར། དེ་ཡང་ཀྱི་རྡོར་
སོགས་རྒྱུད་གཞུང་མང་པོར། སྒོ་གསུམ་གྱི་ལས་རྣམས་ཉོན་མོངས་དང་མཚུངས་པར་ལྡན་
པས་སྤྱད་ན་འཁོར་བར་འཆིང་བ་དེ་ཉིད་ཐབས་ཤེས་ཀྱིས་སྤྱད་ན་བདེ་འགྲོ་དང་ཐར་པའི''''
རྒྱུར་འགྱུར་བ་སོགས་གསུངས་པ་ལྟར་རོ།། སེམས་ཅན་རྣམས་འཁོར་བ་ཐོག་མ་མེད་པ་
ནས་ཁམས་གསུམ་དུ་ལས་དང་ཉོན་མོངས་ཀྱི་དབང་དུ་སོང་སྟེ་འཁོར་བར་གྱུར་ལ། དེས་
ན་རྒྱུད་གཞུང་རྣམས་སུ་འདོད་ཆགས་ཆེ་བའི་གདུལ་བྱ་རྣམས་ལ། འདོད་ཆགས་ཀྱི་རྒྱུ་
དང་འབྲས་བུའི་རང་བཞིན་གྱི་རྒྱུན་ལས་ལྡོག་པའི་ཕྱིར། ཁམས་དཀར་དམར་གཉིས་ཀྱི་
ཉམས་ལེན་གྱི་རིམ་པ་དང་། དེ་བཞིན་ཞེ་སྡང་ཤས་ཆེ་བའི་རང་བཞིན་ཅན་རྣམས་ལ་
རྣམ་པར་བརྟགས་པའི་ཐུགས་ཀྱི་ཐིག་ལེའི་རྣམ་གཞག་བསྟན་ཡོད། སེམས་ཅན་གང་
ཞིག་གཏི་མུག་གི་དབང་དུ་ཕྱིན་ཏེ། ཁམས་གསུམ་དུ་འཁྱམས་པར་གྱུར་པ་རྣམས་ལ་

འཁྲུལ་པ་ལས་སྐྱོབ་པའི་ཕྱིར། མིག་སྨན་དང་རིལ་བུ་སོགས་ཐུན་མོང་གི་གྲུབ་པ་བརྒྱད་ཐོབ་པ་ལ་འབད་ཆེད་དང་། དེ་བཞིན་འཁྲུལ་པ་དང་ལྡན་པའི་སེམས་དེ་རྣམ་པ་ཐམས་ཅད་རྟོག་པས་བཏགས་པ་ཙམ་དུ་ཤེས་པར་བྱ་བའི་ཆེད་རླུང་གི་ཐིག་ལེའི་སྒོམ་རིམ་རྣམས་སྟོན་ནོ།།

གྲུབ་ཐོབ་དང་འབྲེལ་བའི་ངོ་སྤྲོད། (༡༧༣–༡༨༡)

དུས་རབས་གཉིས་པའི་ནང་ "གྲུབ་ཐོབ་དང་ཇུར་ཆགས་ཀྱི་སྐད་དུ་བཞུགས་པའི་གཞུང་ལ་ཉམས་ཞིབ་" ཅེས་པའི་འགོ་བརྗོད་འཁོད་པར། གྲུབ་ཐོབ་རྣམས་དང་། དེ་དག་གི་གཞུང་གི་སྐོར་བཀོད་ཡོད་ཅིང་། དེ་བཞིན་འདིར་ཡང་། གྲུབ་ཐོབ་དེ་རྣམས་ལས་གཞན་པའི་འཇིག་མེད་འབྱུང་གནས་སྦས་པ་སོགས་བཅུ་གསུམ། རྡོ་རྗེ་གདན་པ་སོགས་ཀྱིས་གྲུབ་ཐོབ་ཀྱི་གྲལ་དུ་བཞག་པ་དེ་རྣམས་ཀྱི་རྣམ་ཐར་བོད་ཀྱི་ལོ་རྒྱུས་སྨྲ་བ་རྣམས་ཀྱིས་" བྲིས་པ་ལྟར་དང་། སྡེ་དགེ་བསྟན་འགྱུར་ནང་ཡོད་ལྟར་དེ་དག་གི་གཞུང་རྣམས་ཀྱི་སྐོར་གསལ་བཤད་བྱས་ཡོད།།

❁

ABSTRACT OF THE ARTICLES

Prajñāpāramitā-Stotram *1-2*

The hymn occurs in the unpublished *Stotra-Saṁgraha* (hymnal collections) of Professor J. Upādhyāya marked as folio nos. 76-77, s. n. 97. It has been described in the first number of the *Dhīḥ* (See P. 51).

Āryaśrīvasudhārānāma-Dhāraṇī-Stotram *3-4*

The hymn taken from the unpublished *Stotra-Saṁgraha* of Prof. J. Upādhyāya is specified as st. no. 119, leaves 110-112. Its description occurs in the first number of the *Dhīḥ* (see p. 51).

Introduction to Rare Buddhist Texts *5-34*

In Buddhist Tāntrika order the second specification is of practice which is of the four specific categories-Kriyā (action), Caryā (practice), Yoga (Psychical Concentration) and Anuttara (Supra-mundane) Dhyāna. According to Ḍombī Herukapāda (Sahaja-Siddhi 3/4) practice is of the aspirant in conformity of his ability, meditative potentiality and time-space environmental efficacy which render such instruction of the guru possibilise in practice. The adepts in Buddhist esoterism have translated these practices into folk dialects in various rāgas (tunes) and symphony. The practices have their own modalities.

In this work descriptions are given of three collected works, the *Caryā-Saṁgraha*, the *Caryā-pustaka* and the *Caryā-Grantha*. The caryāpadas appear to be simple folk songs but are mellowed with deep mystical meanings and mantras which can only be comprehended with the guru's instructions. For this reason did the perfect Sanskrit scholars compose the *Caryāgītis* in the dialects.

The Obsolete Bauddha-Vacana saṁgraha *35-47*

Under the above title collections of such Buddhist sayings have been published from six works in the first number of this journal and from five texts in its second number. The sayings bear authorship and text designations along with essential notes. Currently, we have brought

out unusual sayings of authors from following works the "*Subhāṣita-Saṁgraha, Mahāmāyā Tantra-Ṭīkā Guṇavatī, Kṛyā-Samuccaya, Vajrāvalī* and *Guhyasamaya-Sādhana.*

Connotations of Buddhist Technical Terms *48-64*

This glossarial theme was highlighted in the first number of *Dhīḥ*. The two earlier numbers have presented the glossaries of special technical terms extracted mainly from the *SekoddeśaṬīkā* and the *Advayavajra-Saṁgraha.* Herein, we have inserted allied material cited from the *Sādhanamālā*, the *Tattvajñāna-Saṁsiddhi-Ṭīkā*, the *Dohākoṣa-Vyākhyā* and the *Caryākoṣa vyākhyā.*

Pīṭhopapīṭha Classifications *65-69*

The study of the Pīṭhas makes it clear that the 24 pīṭhas which are established in the external world are also to be intrinsically conceived. These are variously classified in the sequence of cakras of body, speech and the mind in the form of Heruka constituting the Jñāna, bhūmi and various pīṭhas installed with ḍākinīs, Vīreśvarīs and the pāramitās.

Some Postures of Bauddha Tantra *70-87*

The exposition of 122 postures in the first number of *Dhīḥ* extracted from the *Sādhanamālā* and the *Yogāmbara-Tantra* and of the non-Buddhist texts the *Śāradā-Tilaka* and *Paraśurāma-Kalpasūtra* has been added by symbols of 88 postures taken from the *Mañjuśrī-Mūlakalpa* in this number. The second recension of the *Mañjuśrī-Mūlakalpa* was published by the Mithila Vidyāpīṭha, Darbhaṅga, in 1964. Each symbolic posture is cited from the second recension of the work bearing proper page marks.

Bauddha-Śaiva-Śākta-Tantras *88-96*

(Comparative Material)

Under this theme we published seventeen types of *Vacanas* in the first number of *Dhīḥ.* Here, we have collected other extant Vacanas which bear up on numbers 3, 4, 6, 9, 13 and 17, while new topics have been inserted under the nos. 18 to 28.

From the vacana cited from the Tai. Up. under no. 3 it is patent that the absolutism of ānanda (as manifest in the state of bliss) is acceptable in the Vaidika and Tāntrika orders without variance. The *Mahābhārata* quoted under no. 4 impresses that like the theme of Durvāsas in the *Mārkaṇḍeya Purāṇa* here also Durvāsas has been dubbed to be 'intoxicated' The sixth Vacana glues the word 'bhag' with a new meaning besides its usual interpretation as found in the *Viṣṇu Purāṇa*. Under no. 9 two more verses have been cited from the *Ālokamālā* besides the vacana from it quoted earlier. The manner in which these occur in the commentary shows that all of these belong to the cited text. No. 17 of the specifications posits the existence of four substances (bhūtas) in the vacana-sūtra of the last caraṇa. The space (ākāṣa) has been left out. The Cārvāk admits of the four bhūtas and the same opinion was held by the Buddhist elders. No. 18 describes the way of central development of the mid-state as reflected in the Kaṣmīra Śaiviṭe system. No. 19 states that the admission in the Manḍala is not essential for the realisation of truth. Under no. 20 some identical verses have been given from the *Hevajra-Tantra* and the *Svacchanda-Tantra*. This theme bears upon the Chomapaṭala of the *Hevajra-Tantra* and the Chummapaṭala of the *Svacchanda-Tantra*. Some of the other topics talked about here will find elaboration in future collections. The twenty-first vacana has also similarities in the two works. No. 22 Consists of vacanas in regard to the Pañcopacāra rite. Bhaṭṭa Gangādhara has imbued them with spiritual meanings. We see the same kind of scholastic meaning elicited in the Buddhist tantras in the context of the seven kinds of anuttara rites. Here are collected some spells in regard to essence, flower, incense, light and gifts. No. 23 indicates that the glossaries of "*Caturbrahma-Vihāra* are also found in the Patanjali's *Yoga-Sūtra* and the Jaina composition *Tattvārtha Sūtra*. No. 24 does not specify any subject but takes into view the composition-style. The *Hevajratantra* uses the term 'daṣārdha' to denote 5. Exactly the same method is followed in the *Ṛjuvimarṣinī-Ṭīkā* on *Nityāṣodaṣikārṇava* composed by Śivānanda, where we find the term 'dvādaṣārdha' used for 6. The Trik-Darṣana of Kashmir known as the Ṣaḍardha-Śāstra does also have the term 'ṣaḍardha' signifying 3. In the Trik-Darṣana many triple matters have been described. The collection under no. 25 does not impart any established definition of affirmation and negation.

What is emphasised is the Yoga of the mind. The yogī must adapt himself to the consonant practices. For further details one must look into the Skt. introduction of the *Luptāgama-Saṁgraha*. (pp. 212-217).

Source of Rare Texts *97-113*

In the first number of our journal a concise report was published on the sources of the rare texts based on 28 such works. The words "source" and "rare" find elaboration there. The second number of the review appeared with information of 14 texts and 2 commentaries. Exploratory roots of 28 more works and 4 commentaries are abstracted in the present number of the review along with information of Chinese and Japanese translations of some of these in Roman character.

Material for The study of Nāma-Saṁgīti *114-140*

Under 'Material for the study of *Nāma-Saṁgīti*-2' we have presented the exposition of assailing doubts in regard to the place where tantra should be imparted and who is anthorised to impart such tantra-this has been done in the context of the three specific orders of Mahā-Yāna, Hīna-Yāna and Tantra-Yāna. It is a matter of common observation that the Mahāyāna Sūtras begin their recital with such phrase as 'Evaṁ mayā śrutaṁ' in the case of the Buddha-Vacanas. Such method has been followed by the Tantra śāstras where we come across recitals in very much the same way using the same kind of phrases or in their absence the initial verse of the text representing a like sanctity. The present paper draws on an anology of the 'Atha Vajradharaḥ Śrīmān 'of Nāma-Saṁgīti and 'Evaṁ mayā śrutaṁ' with the commentary of Raviśrī.

Three commentaries of *Nāmasaṁgīti* are extant in the original Sanskrit. Although very little is known of these commentators, attempt has been made to publish information of their life, work and cognate tradition for their fame. Whatever mss of these scholiasts are accessible we have noticed them in this review.

Manuscripts of the *Mañjuśrī Nāma-Saṁgīti* have been largely extant on palmleaves and on paper in the libraries of the world and private collections. So, it is not possible to collate all this information, but we have tried to amass a summary result.

Bindu In Bauddha Tantra *141-152*

The nerve and wind have been earlier described. We will presently take up the female nāḍī and male vāyu to constitute the stratum for holding the immaculate semen to pass through the glandular passage. Semen is divisible into three parts :

1. Nucleic semen which is immaculate.
2. Mind being unpredicated, the semen nurturing falsity.
3. Semen imbued with matter, spell and wind.

Thus can be prognosticated the five matter embued 'matter-semen' (dravya bindu), the thought-construed 'spell-semen' (parikalpita mantra bindu) and the 'interdependent' wind semen (paratantra vāyu bindu) Initially, the three kinds of semen devolved on false experience and 'dependently originating' lead to impure conduct. Consequently, they are held mutable for producing misery. But the action (Karma) keeping the beings in bondage does also possess the efficacy of liberating them fortified by the guru's precept and perceptual method. The tantrāgama is vociferous in this matter. It is laid in the *Hevajra Tantra Rāja.*

"Yena Yena hi badhyante jantavo raudrakarmaṇā /
Sopāyena tu tenaiva mucyante bhavabandhanāt //

Men migrate through the aeons due to great lust and are born in the Kāma, rūpa and arūpa worlds. In order to detract the minds of men from the lust (Kāma), cause (hetu) and result (phala) the order of meditating on semen-blood 'dravya bindu' has been enjoined. Persons born evil owing to great jealousy must seek, redress from their mailaise by practising the thought-construed 'mantra bindu'.

Persons subjected to unreal impressions due to great infatuation must try to inculcate eight accomplishments by which they may cultivate the sensory truth essence for perception. Such men should meditate on the interdependent 'Vāyu Bindu'.

A survey of siddha and Apabhraṁśa Literature *153-161*

Like the short biographical Sketches of Siddhas appearing in the second number of this journal we bring out the biographies of Abhayākara Gupta and twelve others in the present review which find mention in the lists of the siddhas made known by Vajrāsanapāda and some other ācāryas. Their lives are given as told by Tibetan historians with their work specifications as extracted from sDe dGe bsTan ḥGyur.